गुरुकुल-पत्रिका

शोध–पत्रिका

Monthly Research Magazine

सम्पादक

डॉ० भारतभूषण विद्यालंकार
वेदाचार्य, एम.ए., पी-एच.डी.
प्रोफेसर - वेद विभाग

एवं

निदेशक

श्रद्धानन्द वैदिक शोध संस्थान

उपसम्पादक

डॉ० दिनेशचन्द्र शास्त्री 'धर्ममार्तण्ड'
वरिष्ठ प्रवक्ता, वेद विभाग

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार -249404

जनवरी - मई 1998	वर्ष 50वां	पौ० शु० तृतीया संवत् 2054 से ज्ये० शु० षष्ठी 2055

सम्पादक मण्डल

मुद्रक : किरण ऑफसैट प्रिंटिंग प्रेस, निकट गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, कनखल फोन : 415975

विषय–सूचि

अनुक्रमणिका

शीर्षक	लेखक का नाम	पृष्ठ

विषयानुक्रमाणिका

विषयनुक्रमाणिका :

❖ ❖ ❖

श्रुति–सुधा

ईशावास्यमिदँ सर्वम् ।।   यजु० ४०.१

यह सब कुछ ईश्वर से आच्छादित है।

By one supreme Ruler is this universe pervaded.

ooo

तस्मिन्निदँसं च विचैति सर्वम् ।। यजु० ३२.८

उस परमात्मा में ही यह सम्पूर्ण विश्व लय होता है और उत्पन्न होता है।

In Him rests the whole and from Him it issues.

ooo

स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ।। यजु० ३२.८

वह व्यापक परमेश्वर सब प्रजा में ओत प्रोत है।

That all pervading spirit is interwoven in all his subjects

ooo

तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।। यजु० ३१.१९

उसके सहारे ही सारे भुवन खड़े हैं।

In Him have all the worlds their rest.

ooo

तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ।। अ० ९-१०-१९

उस ब्रह्म से ही चारों दिशायें जीवन लेती हैं।

Through Him live the four quarters.

ooo

प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ।। यजु० ३२-४

वह परमेश्वर सर्वतोमुख होकर सर्वत्र वर्त्तमान है।

With His faces in all directions He is facing every one.

ooo

मेहता रामचन्द्र शास्त्री प्रणीत
'वैदिक सूक्तिः' के पृष्ठ ७-९ से उद्धृ

सम्पादकीय

पोखरण के धमाके ने विश्व में एक तीव्र गतिविधि उत्पन्न कर दी है। इससे सारे यूरोप में एक अचम्भा-सा महसूस किया गया कि प्रौद्योगिकी में पिछड़े ६५ करोड़ दरिद्र क्या विश्व को अंगूठा दिखाते हुए अपनी सुरक्षा के प्रति सजग होकर अपने पैरों पर खड़े हो सकते हैं। वे बुद्ध व गांधी के देश तथा उपनिषदों के तत्व ज्ञान की ध्वजा फहराने वालों से इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे। उनका पुराना विचार था कि भारत दार्शनिकों का देश है वहां चिन्तन की पूर्ण स्वतंत्रता रही है, ऐसा विदेशों में कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता।

वे भूल गए थे वैदिक ऋषियों का राष्ट्रीय संदेश। जिसमें ब्राह्मणत्व के बाद क्षत्रियत्व को वरीयता प्रदान की गई। अपनी सेनाओं के मनोबल को बढ़ाते हुए एक नागरिक कहता है "आरे शत्रुं कृणुहि सर्ववीरम्" शत्रुओं को अपने राष्ट्र की सीमाओं से दूर भगा दो "प्रणुद मे सपत्नान्.... अधस्पदं कृणुष्व" अपने शत्रुओं को दूर भगा दो, उन्हें पैरों से दबा कर रखो। "उत् तिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह" उठो ! और अपने ध्वज फहराते हुए प्रसन्नता पूर्वक आगे बढ़ो। शत्रु पर विजय व अपना मनोबल ऊँचा रखने के लिए बहुत अच्छे व प्रहारकारी आयुधों की आवश्यकता होती है "अग्र वज्रस्तर्पयताम्" इस वज्र के द्वारा हम राष्ट्रघातियों को दूर कर दें। इन आयुधों के नाम काल, स्थान पर परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहे हैं। कहीं वह आग वर्षक बाण है तो कहीं तोप का बम। सबकी मूलभूत भावना एक ही रही है।

वेद का ऋषि सामान्य आयुधों की ही बात नहीं करता, वह तो अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, जलों के माध्यम से भी शत्रुओं का नाश करने की बात करता है। देश के व्याघ्र नर पुंगव मृगरूप शत्रुओं पर टूट पड़ें। वे किसी भी दिशा से आने वाले प्रहारों को नष्ट करने में समर्थ हों। ये आक्रमण धरती से, अन्तरिक्ष या द्युलोक से भी हों तो उन्हें और उन स्थानों पर स्थित शत्रु मानवों को भी नष्ट कर देने के स्पष्ट आदेश हैं "ये अन्तरिक्षे ये दिवि पृथिव्यां ये च मानवाः" जिससे देश के नागरिक अपराजित मनोवृत्ति वाले बने रहें, वे किसी भी पीड़ा से रहित हों। क्षत रहित हों "अजीतोऽहतो अक्षतो ऽध्यष्ठां पृथिवीमहम्"। इसीलिए सेना के वीरों को देश शब्द से सम्बोधित किया गया है। ये दिव्य गुणयुक्त सेनाएं शत्रुओं को घर्षित करती हुई निरन्तर आगे बढ़ती रहें "देवसेनानामभिभंजतीनाम्"।

उपरोक्त उद्धरणों को प्रस्तुत करने का उद्देश्य हजारों-लाखों वर्षों की गौरवशाली परम्परा और इस देश की महान् संस्कृति की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालना है। दासता की एक लम्बी कालावधि में गिरे हुए मनोबल, रोगी शरीरों, भूख व अज्ञानता के गर्त में पड़ी एक जाति, एक राष्ट्र अचानक ही धूल झाड़कर खड़ा हो गया। उसका दृष्टिकोण, बदल गया। उसने एक शक्तिशाली राष्ट्र की भांति व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया। ९५ करोड़ दरिद्रों का देश अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिबन्धों की उपेक्षा करने लगा।

इस घटना के बाद विश्व का हमें देखने का दृष्टिकोण बदल गया है। परन्तु कुछ दिवान्ध इस घटना पर छाती पीटने लगे। राष्ट्रव्यापी जन भावना इससे प्रबल हुई है। बम का नाम मात्र जानने वाले भी सिर ऊँचा करके चलने लगे, यह राष्ट्रीय भावना इससे बलवती ही हुई है। राष्ट्र को चाहिए कि इस प्रकार के शक्तिवर्धन में सतत संलग्न रहे। यही शक्ति पूजा है और यही शक्ति पूजा का उद्देश्य। हमारी शक्ति आत्मसुरक्षा के लिए है। हमारी ताकत पर-पीड़न के लिए नहीं है। तभी सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण की बात हम कर सकेंगे। हमारा सदा उद्देश्य रहा है।

"अभयं मित्रादभयममित्राद् अभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्।।"

भारतभूषण विद्यालंकार

स्मृतियों के वातायन से : डॉ० प्रशांत कुमार

प्रो० (डॉ०) ओमप्रकाश सिंहल
पूर्व अतिथि आचार्य तथा सां०शै०वि०, पेइचिड.
विश्वविद्यालय चीन लोक गणराज्य

पिछले ढाई पौने तीन वर्षों से चीन में रहते हुए यों तो अपने देश के तीज-त्योहार खान-पान, बोली-बानी और मौसम ने बार बार मातृभूमि की याद दिलाई है, किंतु इन सबसे ज्यादा याद आई है उन संगी साथियों की जिनके उलाहने, ताने-तिश्ने मुझे अपने गिरेबान में झाँकने और अपनी गलतियों को सुधारने का मौका देते थे, जिनसे मैं अपने दुःख क़ी सब बातें कह कर मन का बोझ हल्का कर लेता था, जिनके साथ रहकर जिंदगी जीने का नया अर्थ पाता था, जिनके प्यार भरे बोल मेरे भीतर आत्मबल का ऐसा संचार करते थे कि दुर्द्धर्ष संघर्ष के क्षणों में भी मजबूत पैरों से आगे बढ़ पाता था। संघर्ष-पथ पर अनवरत चलते रहने की प्रेरणा देने वाले आत्मीय मित्रों में अन्यतम थे भाई प्रशांत कुमार।

भाई प्रशांत कुमार मेरे समवयस्क थे। मेरी और उनकी आयु में दो मास से भी कम का अन्तर था। उनका जन्म २१ सितंबर, १९३७ को हुआ था और मेरी वास्तविक जन्मतिथि २६ जुलाई, १९३७ है। लेकिन इसके बावजूद उन्होंने मुझे हमेशा बड़े भाई का सा आदर दिया।

प्रशांत जी से मेरा पहला परिचय कब हुआ इसकी मुझे कतई याद नहीं है। हाँ, इतनी स्मृति अवश्य है कि सन् १९६२ की सर्दियों में नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी के आर्य भाषा पुस्तकालय में शोध कार्य के दौरान हफ्तों तक दिन भर साथ बैठ कर काम करने, खाने-पीने और बतियाने का जो सिलसिला एक बार शुरु हुआ वह चीन आने से पहले तक न केवल बना रहा अपितु निरंतर सुदृढ़ होता रहा। आपसी संवाद का यह रिश्ता चीन आने के बाद भी पत्रों के माध्यम से अटूट बना रहा। सच तो यह है कि ६ दिसम्बर, सन् १९९३ ई० को जब मैं पेइचिड. स्थित भारतीय दूतावास में अपनी डाक लेने गया था तब मन में यह आस भी संजोए बैठा था कि इस बार की डाक में उनका पत्र अवश्य होगा। पत्र न पा कर मन अनजाने नाना प्रकार की शंकाओं में डूबने-उतराने लगा था। इसका कारण यह था कि वे नियमित रूप से पत्र लिखने और पत्रों का तुरंत उत्तर देने में विश्वास करते थे। वे मानते थे कि किसी के पत्र का उत्तर देना ठीक वैसा ही है जैसा कि दरवाजे पर दी जा रही दस्तक सुन कर दरवाजा न खोलना। और ये पत्र मात्र औपचारिक न होते थे। वे होते थे आत्म-रस से लबालब भरे हुए। उन्हें पढ़ कर ऐसा लगता था मानो वे सामने बैठे हुए बात कर रहे हों। हाँ, तो मैं अपने मन को आश्वस्त करने का प्रयत्न कर रहा था कि प्रशांत जी के पत्र न आने का कोई विशेष कारण नहीं है और मन था कि उद्वेगपूर्ण होता जा रहा था।

सहसा मेरी निगाह २ दिसम्बर के दैनिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित उस समाचार पर चली गई जिसमें मारीशस में हो रहे विश्व हिन्दी सम्मेलन में भाग लेने के लिए जाते समय हवाई अड्डे पर उनके प्राण पखेरु उड़ जाने की सूचना छपी थी। मुझे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। मैंने वह समाचार दो-तीन बार पढ़ा। फिर मेरा सिर चकराने लगा। मैं वहाँ रखी कुर्सी पर बैठ गया। स्वागत कक्ष में बैठा सुरक्षा कर्मचारी मेरी हालत देखकर घबरा गया। उसने मेरा कंधा झकझोरते हुए पूछा- क्या बात है ? घर पर सब ठीक है न ? फिर पानी का गिलास सामने रख दिया। मेरे मुँह से एक भी शब्द न निकला। भारी मन से उठा, टैक्सी ली और अपने घर वापिस आ गया। इसके बाद भी कितने ही दिनों तक मैं अपने मन को व्यवस्थित न कर सका। मेरे मानस-पटल पर अतीत के अनेक घटना-प्रसंग अलगनी पर टंगे मनोरम रंगीन वस्त्रों जैसे दिखते रहे।

पत्नी ने अपने पिछले ही पत्र में लिखा था कि भाई प्रशांत जी ने पत्र लिख कर न केवल कुशलक्षेम पूछी है अपितु यह भी लिखा है कि किसी भी प्रकार की सहायता की अपेक्षा हो तो उन्हें निःसंकोच लिखूँ या फोन करूँ। मेरे कहे या लिखे बिना प्रशांत जी का पत्नी को यह पत्र लिखना मेरे प्रति उनकी प्रगाढ़ प्रीति का ही सूचक नहीं था अपितु अपने आत्मीयों के प्रति उनके सहज प्रेम की निश्छल अभिव्यक्ति भी रेखांकित करता था। मैंने उन्हें सदैव दूसरों के लिए इसी प्रकार चिंतित और उनकी समस्याओं के निदान के लिए प्रयत्नशील होते देखा था।

कोई व्यक्ति किसी के साथ कितनी आत्मीयता रखता है इसकी परख उस समय होती है जब उसे दो स्थितियों में से किसी एक का चयन करना पड़ता है। प्रशांत जी का कार्यक्षेत्र बड़ा विस्तृत था। उनकी नानाविध सामाजिक-राजनीतिक प्रतिबद्धताएं थीं। अतएव उनके जीवन में ऐसे निर्णय लेने के अवसर प्रायः आते रहते थे। लेकिन उनके मन में इस संबंध में किसी प्रकार की दुविधा नहीं थी। अपने आत्मीयजनों के कार्यक्रमों में सम्मिलित होने को उन्होंने सदैव प्राथमिकता दी। मुझे स्मरण है कि मेरे चीन-प्रवास से पूर्व भाई जयप्रकाश भारती ने २८ सितंबर, सन् १९९२ ई० की शाम को जिस मिलन-गोष्ठी का आयोजन किया था उसी दिन और उसी समय डॉ० गौरी शंकर राजहंस के लाओस में राजदूत नियुक्त किए जाने के उपलक्ष्य में एक अभिनन्दन समारोह आयोजित था। भाई प्रशांत कुमार को उसमें भी सम्मिलित होना था। लेकिन उन्होंने मिलन-गोष्ठी में शामिल होने को प्राथमिकता दी। उस समारोह में वे बाद में ही गए। उनके इस प्रकार के आत्मीय व्यवहार के कारण ही उनके पास कंधे से कंधा मिला कर काम करने वाले मित्रों की एक अच्छी खासी मंडली थी।

प्रशांत जी कर्मठ एवम् प्रबुद्ध सामाजिक राजनीतिक कार्यकर्त्ता होने के साथ साथ साहित्य स्रष्टा भी थे। सच तो यह है कि साहित्यिक कार्यक्रमों में शामिल होने पर उन्हें

आत्मिक सुख प्राप्त होता था। यही कारण था कि सामाजिक-राजनीतिक कार्यक्रमों की भीड़-भाड़ में से वे साहित्यिक कार्यक्रमों के लिए हमेशा समय निकाल लेते थे। २१ दिसंबर, १९९१ की बात है। मैंने उस दिन "हिन्दी बाल साहित्य : परम्परा और प्रयोग" विषय पर पूरे दिन की गोष्ठी का आयोजन किया था। उस दिन मौसम खराब था। गोष्ठी शुरु होने से थोड़ी देर पहले बूंदा-बांदी भी हो गई थी। यों इस गोष्ठी में स्व० श्री अक्षयकुमार जैन, देवेन्द्र सत्यार्थी, जयप्रकाश भारती, दिविक रमेश, रवीन्द्र दरगन आदि अनेक साहित्यकार आए थे किन्तु मित्रों के चेहरे जरा कम दिखाई दिए। लेकिन प्रशांत जी एक आवश्यक राजनीतिक बैठक के बावजूद शामिल हुए। पहले सत्र की समाप्ति के बाद उन्होंने मुझे एक कोने में ले जा कर पूछा- "आपकी गोष्ठी कब तक चलेगी" ? मेरे यह बताने पर कि शाम के पाँच बजे तक तो जरूर ही चलेगी उन्होंने कहा- "इस समय मुझे अपनी पार्टी की एक जरूरी बैठक में जाना है, किन्तु वहाँ से फुरसत पाते ही फिर आऊंगा।" मैंने सोचा कि अब वे क्या आएंगे, मेरे कुछेक मित्रों का भी यही विचार था, किंतु दो घंटे बाद उन्हें बीच पाकर हम सब मित्रों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

प्रशांत जी की आत्मीयता तथा साहित्यानुरागी मन की एक और घटना है। २९, ३०, ३१ दिसम्बर, १९८८ को लखनऊ में भारतीय हिन्दी परिषद् का वार्षिक अधिवेशन था। मैं सन् १९५९ से भारतीय हिन्दी परिषद् के अधिवेशनों में लगभग नियमित रूप से भाग लेता रहा हूँ। कई अधिवेशनों में तो मैं और प्रशांत जी एक साथ शामिल हुए थे। लेकिन लखनऊ अधिवेशन में शामिल होने और उसमें पढ़े जाने वाले अपने निबंध की टंकित प्रति भेज देने के बावजूद मेरा मन वहाँ जाने को नहीं कर रहा था। उन दिनों मैं कतिपय पारिवारिक समस्याओं से कुछ उस प्रकार जूझ रहा था कि वहाँ जाने की इच्छा निःशेष हो चुकी थी। मुझे घर से बाहर निकलना असंभव सा लग रहा था। भाई रविन्द्र दरगन के माध्यम से प्रशांत जी को ज्यों ही मेरे न जाने की बात मालुम हुई कि उन्होंने तत्क्षण अधिवेशन में साथ चलने का आग्रह करने के साथ-साथ मेरे लिए टिकट भी खरीद ली। जिस दिन प्रस्थान करना था उस दिन मुझे साथ लेते हुए गए। लखनऊ में वे अपनी ससुराल में ठहरे और मेरे ठहरने की व्यवस्था भी वहीं की। अधिवेशनों में लोग प्रायः नगर-भ्रमण के लिए निकल जाते हैं जिसके फलस्वरूप साहित्य-गोष्ठियों में उपस्थिति काफी कम रहती है। लेकिन प्रशांत जी सभी गोष्ठियों में उपस्थित रहे। स्वयं निबंध पाठ करने के अतिरिक्त साहित्यिक परिचर्चाओं में सक्रिय भागेदारी निभाई।

यों तो प्रशांत जी सभी कार्य मनोयोगपूर्वक करते थे, किन्तु उनका मन साहित्य-सृजन में ही रमता था। वैदिक साहित्य, धर्म और संस्कृति, भारतीय काव्यशास्त्र, शिक्षा और समाज तथा तुलनात्मक भाषा-विज्ञान उनके लेखन के कतिपय उल्लेखनीय आयाम हैं। "वैदिक साहित्य में नारी (१९६४) "राज्य व्यवस्था : वैदिक साहित्य के आधार पर"

(१९७५), "वैदिक समाज व्यवस्था" (१९७८), "धर्म का स्वरूप" (१९८१), "रसाभास" (१९७१), भारतीय काव्यशास्त्र का विश्वकोश (अप्रकाशित), शिक्षा व भाषा नीति (१९८२), "शिक्षा की वर्तमान समस्याएं", "मुलतानी और हिन्दी का तुलनात्मक व्याकरण" आदि उनकी कतिपय उल्लेखनीय रचनाएं हैं। उनके लेखन का मूल लक्ष्य अतीत के आलोक में वर्तमान समस्याओं का हल ढूंढ़ना था। वे परिवर्तन के विरोधी नहीं थे, किन्तु इतना अवश्य मानते थे कि जिस शिक्षा व्यवस्था ने आर्य भट्ट, वराहमिहीर जैसे विश्वविश्रुत वैज्ञानिकों, पाणिनी जैसे वैयाकरणों, बाल्मीकि और कालिदास जैसे साहित्यकारों को जन्म दिया वह सर्वथा अनुपादेय नहीं हो सकती। आवश्यकता केवल यह है कि उसमें समकालीन अपेक्षाओं के अनुरूप संशोधन-परिशोधन कर युग सापेक्ष बनाया जाए।

यद्यपि प्रशांति जी ने अपने लेखन को पर्याप्त समय दिया था किन्तु फिर भी उन्हें अपने से यह शिकायत रहती थी कि विभिन्न दिशाओं में बिखर जाने के कारण वे समुचित लेखन नहीं कर पाते। इस बात का जिक्र उन्होंने मुझसे अनेक बार किया था। चीन में मिले उनके पत्रों में भी यह दर्द कई बार व्यक्त हुआ था।

प्रशांत जी मृदुभाषी व्यक्ति थे। उनके स्वभाव में तेजी नहीं थी। मैंने उन्हें कभी क्रुद्ध होते नहीं देखा। यदि कोई उनके विरुद्ध अनुचित बात भी कह देता था तब भी वे उत्तेजित नहीं होते थे। अपने ऊपर लगाए गए आक्षेपों या आरापों का शालीनता एवम् दृढ़तापूर्वक ऐसा उत्तर देते थे कि आरोपकर्ता निरुत्तर हो जाता था। उनका यह अनुकरणीय गुण मैं प्रयत्न करने पर भी अपने जीवन में नहीं ला सका।

पिछले तीन वर्षो से मुझे प्रशांत जी की याद प्राय: आती रही है। वे कई बार सपनों में भी दिखे हैं, पर सपना सच नहीं होता। कडुवा सच यही है कि मैंने अपना गाढ़े का साथी सदा सर्वदा के लिये खो दिया है।

प्राचीन भारत में विषकन्या-प्रयोग

राजेश शुक्ल
मगध विश्वविद्यालय-पटना

नारी विधाता की सृष्टि का एक अनुपम उपहार है। सृष्टि के प्रारम्भ से वर्तमान समय तक के इतिहास के विशाल कलेवर पर नारी के विविध चित्र बड़ी उत्कृष्टता के साथ अंकित हैं। जीवन का ओर राष्ट्र का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें पुरुष के समान नारी का योगदान न हो। परिवार, समाज, राष्ट्र और समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, सभी में नारी-जाति की अपनी विशिष्ट भूमिका रही है। इन भूमिकाओं में इतनी विभिन्नता और विचित्रता है कि उसको पढ़कर या स्मरणकर हम विस्मित हो उठते हैं।

वैदिक-कालीन नारी जहाँ अपनी ममता, वात्सल्य, करुणा आदि गुणों से अभिमंडित है, मानव की प्रेरिका है, जनक की सभा में अनेक विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ करने वाली गार्गी के रुप में ब्रह्मवादिनी है, सती अनुसूया के रुप में पातिव्रत्य धर्म की पराकाष्ठा है, वहाँ युद्ध-भूमि में अपने वीर पति दशरथ के साथ युद्ध करने वाली और रथ का पहियां टूट जाने पर अपने हाथ का सहारा देकर रथ को गतिशील रखने वाली कैकेयी के रुप में भी नारी का दिव्य रुप दिखाई देता है।

एक ओर तो नारी का यह अलौकिक रूप और दूसरी ओर उसी नारी का एक ऐसा भयावह रूप, जिसके स्मरण मात्र से मानव भयभीत हो जाता है। हमारे प्राचीन सहित्य में और इतिहास के पन्नों में नारी के एक विचित्र स्वरूप का वर्णन किया गया है, जिसे "विषकन्या" के नाम से जाना जाता है। आज भले ही हम इसपर विश्वास न करें किन्तु यह इतिहास और साहित्य का सत्य है कि अत्यंत दूरगामी योजना के अंतर्गत शत्रु-पक्ष को प्रबल हानि पहुँचाने के उद्देश्य से विषकन्याओं का निर्माण किया जाता था और समय आने पर उसका प्रयोग भी किया जाता था। आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध ग्रंथ सुश्रुतसंहिता में विषकन्या की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि वह "विषकन्या" है जिसको ग्रहों के कारण वैधव्य-योग होता है। उपदंश आदि योनि रोगों से पीड़ित स्त्री भी "विषकन्या" कही जा सकती है।[1] वर्तमान समय में लाखों-करोड़ों लोगों के प्राणों का हरण करने वाला एड्स रोग जिसको है वह विषकन्या और पुरुष विषपुरुष कहा जा सकता है क्योंकि ऐसी स्त्री अथवा ऐसे पुरुष के संपर्क से प्राणहरण की पूरी-पूरी संभावना रहती है। सुश्रुतकार ने यह भी कहा है कि दूषित मनवाले व्यक्ति निपुण राजा को विषों से मार देते हैं अथवा कभी सौभाग्य की इच्छा से स्त्रियाँ नाना प्रकार के योगों को देती है अथवा विषकन्या के उपयोग से मनुष्य तुरन्त प्राण खो बैठता है। इसलिए वैद्य को चाहिए कि वह निरंतर राजा की विष से रक्षा

करे।[2] आयुर्वेद के अष्टांग-संग्रह नामक ग्रंथ में विषकन्या की चर्चा है। वहां कहा गया है कि राजा लोग शत्रु को मारने के लिए कई दिन तक विष का अभ्यास कराकर विषकन्या तैयार करते हैं। राजा को चाहिए कि वह उस प्रकार की कन्याओं से बचता रहे। शत्रु पर आक्रमण करने वाले राजा को चाहिए कि वह बिना जानी हुई और बिना परीक्षा की हुई किसी कन्या से स्पर्श तक न करें क्योंकि चतुर लोग अनेक प्रकार के प्रयोग करके राजा को छलते हैं। उसी में एक प्रयोग विषकन्या वाला है। ऐसी कन्या को छूने से, श्वासोच्छ्व से मनुष्य मर जाता है।[3] अष्टांग-संग्रह में विषकन्या की परीक्षा विधि भी बताई गई है। उसके मस्तक, केश और हाथ से स्पर्श होते ही पुष्प और पत्र कुम्हला जाते हैं। उसकी शय्या में खटमल मर जाते हैं, उसके कपड़े में जुएं मर जाती हैं इसके स्नान किए हुए जल में मक्खियां आदि जीव मर जाते हैं।[4] संस्कृत के विद्वानों ने यह कहा है कि "हन्ति स्पृशन्ती स्वेदेने, गम्याना च मैथुने। पक्वधृतादि च फलं प्रशांतयति मेहनम्।" अर्थात् विषकन्या के चुंबन, सम्भोग या किसी प्रकार के सान्निध्य से भी विष का प्रभाव दूसरे पुरुष में आ जाता है।

आयुर्वेद का ही एक अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ है चरक संहिता, जिसके रचियता महर्षि चरक थे। चिकित्सा-शास्त्र का ग्रन्थ होते हुए भी राज्यकर्म के सम्बन्ध में निर्देश देते हुए महर्षि कहते हैं कि राजा को शत्रुओं से मिले हुए अपने ही पुरुषों व शत्रुओं से तथा विशेष सौभाग्य संपदा की कामना करने वाली स्त्रियों से भी विष का भय रहता है। भृत्य लोग आहार-विहार के द्रव्यों में विष मिलाकर दे देते हैं, इसलिए सेवकों की परीक्षा कर उन्हें सावधानी पूर्वक रखना चाहिए।[5]

राजनीति-निपुण लोग इस तथ्य को भलीभाँति जानते थे कि नारी पुरुष का सबसे बड़ा आकर्षण है। सुन्दर स्त्री को देखकर सामान्य जन की बात तो दूर बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों का मन भी विकृत हो डोलने लगता है। विश्वप्रसिद्ध महाकवि कालिदास विरचित अभिज्ञानशाकुन्तल नाम का नाटक इसका ज्वलन्त उदाहरण है, जिसमें घोर तपस्यारत विश्वामित्र ऋषि मेनका नामक अप्सरा के अनुपम सौंदर्य को देखकर विचलित हो गये थे और परिणामंस्वरुप शकुन्तला का जन्म हुआ। मानव की इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए विजय को ही सर्वोपरि मानने वाले राजनीति-निष्णात जनों ने नारी के रूप-लावण्य को विषकन्या के रूप में प्रयोग किया। विषकन्याओं के निर्माण के लिए किसी सुंदर कन्या को उसके जन्म के कुछ ही समय पश्चात् बहुत अच्छा धन देकर उसके माता-पिता से खरीद लिया जाता था। प्रारम्भ से ही थोड़ी-थोड़ी मात्रा में विष देकर उस कन्या को विष भक्षण का अभ्यस्त बनाया जाता था। इस प्रक्रिया के मुगलकालीन प्रसिद्ध इतिहासकार अबुल फजल ने लिखा है-हिंदू राजा अपने शत्रुओं का मुकाबला हर स्तर पर

करते थे। विषकन्याओं द्वारा विपक्ष का विनाश भी उन उपायों में एक था। छह माह की दुधमुही सुन्दर बालिकाओं को बहुत थोड़ी मात्रा में धतूरे का विष दिया जाता था। शनैः शनैः यह मात्रा बढ़ाई जाती थी और जब इसे पचाने की क्षमता विकसित हो जाती तो उन्हें इससे तीव्र जहर दिया जाता था। दस वर्ष की आयु में ही उन बालिकाओं पर संखिया जैसे विष का प्रयोग किया जाता था। तेरह-चौदह वर्ष की आयु में उन्हें विषैले सर्पदंश का आदी बनाया जाता था। सर्पदशों में पारंगत होगर विषयुक्त होना श्रृंखला की अंतिम कड़ी हुआ करती थी। विष कन्या के सृजन की इस प्रक्रिया के समानान्तर ही उन्हें नृत्य-संगीत गायन, सौदर्य-परिधान के अतिरिक्त देश परिवर्तन की कला में भी प्रवीणता प्राप्त करनी होती थी। अतः विषकन्याओं को प्रत्येक दृष्टि से दक्ष बनाना एक लम्बी किन्तु परिष्कृत वैज्ञानिक योजना के तहत होता था। मुगल इतिहासकार का यह कथन कल्पना पर अधारित नहीं है। महान् इतिहासकार कर्नल टाड ने भी अपने अमूल्य ग्रंथ- **एजल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान** में इन बातों की पुष्टि की है।

प्राचीन ग्रंथ समरांगण सूत्रधार में भी विषकन्याओं की चर्चा है। वे कहते हैं कि विषकन्या के स्पर्शमात्र से ताजा फल मुरझा जाते हैं। दमकते स्वर्णाभूषणों की आभा उसके शरीर के हलके स्पर्श से नष्ट हो जाती है। इसलिए प्राचीन काल में राजा रजतपात्रों का प्रयोग करते थे क्योंकि विषैले भोज्य-पदार्थों से चाँदी के पात्रों का रंग परिवर्तन हो जाता था।

महाभारत काल से आज तक के पाँच हजार वर्षों के अंतराल में विषकन्याओं के प्रयोग के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। महाभारत महाकाव्य का एक प्रसिद्ध पात्र है पूतना। श्रीकृष्ण का चरित्र जानने वाले सभी पाठक पूतना के नाम से सुपरिचित हैं। मथुरा-नरेश कंस के आदेशानुसार राक्षसी पूतना ने दिव्य-रमणी का रूप धारण कर, गोकुल में पहुँचकर, नन्हें बालक कृष्ण को विषदग्ध स्तनपान कराकर मारने का असफल प्रयत्न किया था। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने बड़ा सुन्दर रूप बनाया था। उसकी चोटियों में बेल के फूल गूथे हुए थे, वह सुंदर वस्त्र पहने हुए थी, जब उसके कर्णफूल हिलते थे तब उनकी चमक से मुख की आरे लटकी हुई अलकें और भी शोभायमान हो जाती थी। उसके नितंब और कुच-कलश ऊँचे-ऊँचे थे और कमर पतली थी। वह अपनी मधुर मुस्कान और कटाक्षपूर्ण चितवन से ब्रजवासियों का चित्त चुरा रही थी।[६] महाभारत काल में ही शत्रु को पराजित करने के लिए छल-कपटपूर्वक विष देने का प्रसंग आता है। दुर्योधन और भीम की शत्रुता जन्म सिद्ध थी। भीम को मारने के लिए दुर्योधन ने षड्यंत्रो का कुचक्र रचा। इसी षड्यंत्र की श्रृंखला में दुर्योधन ने जलक्रीड़ा के बहाने से भीम को नगर से बाहर बुला लिया और विषमिश्रित लड्डू खिला दिया भीमसेन मूर्च्छित हो गये, तब दुर्योधन ने भीम को लता

की रस्सियों से बांधकर गंगा में डाल दिया।[७]

भारतीय राजनीतिशास्त्र में आचार्य कौटिल्य का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। उनका "कौटिल्य अर्थशास्त्र" नामक ग्रंथ राजनीति का अद्‌भुत महाकाव्य है। महानन्द के विशाल साम्राज्य को समाप्त कर चन्द्रगुप्त मौर्य को राज सिंहासन पर बैठाना और नन्दों के अत्यन्त विश्वसनीय और नीतिनिपुण महामंत्री राक्षस को अपनी राजनीति की चालों से अपने वश में कर लेना चाणक्य की नीतिमत्ता का परिचायक है। उन्होंने अपने ग्रन्थ में विष प्रयोग की बात कही है। चाणक्य कहते हैं कि शत्रु को पराजित करने के लिए गुप्तचर शत्रु के दुर्ग में पहुँचकर उसके सेना शिविर में मद्य-विक्रेता का वेश धारण करके कोई गुप्तचर किसी प्राणदण्ड की सजा पाये हुए व्यक्ति को अपना पुत्र प्रचारित करके उसके आक्रमण करने पर विष प्रयोग करके उसको मार डाले। उसके बाद मृत व्यक्ति की आत्मा को तृप्त करने के लिए मादकता उत्पन्न करने वाली एवं विषमिश्रित मदिरा से भरे सैकड़ों घड़े सेना शिविर में प्रदान करें। उनका विश्वास पाने के लिए पहले उन्हें विषरहित मदिरा पिलाए और बाद में विष मिश्रित मदिरापान कराकर मार डाले। कौटिल्य अर्थशास्त्र में ही चाणक्य ने राजाओं को सावधान करते हुए कहा है कि जब भी राजा अपनी महारानी से मिलना चाहें तब वह विश्वस्त वृद्धा परिचारिका के साथ ही अन्त:पुर में जायें। अकेले कभी न जाये। जैसे पटरानी के घर में छिपे हुए वीरसेन ने अपने भ्राता राजा भद्रसेन को मार डाला था, अपनी माता की शय्या के नीचे छिपकर बैठे राजपुत्र ने राज कारुश की हत्या कर दी थी, धान के लावा में मधु के बहाने विष मिलाकर रानी ने ही काशीराज को मार डाला था। इसी प्रकार विष में बुझे नूपुर द्वारा वैरन्त्य, करधनी की मणि से सौवीर, विषैले दर्पण के स्पर्श से जालूख एवं अपने जूड़े में अस्त्र छिपाकर रानी द्वारा राजा विधुरथ मारा गया था।[८] अत: इन बातों को ध्यान में रखकर राजा एकाकी कभी भी इन स्थानों में न जाये। इसी प्रकार गुप्तचरों का वध करने के लिए भी ऐसे ही प्रयोग किये जाते थे।[९] चाणक्य कहते हैं - नट-नर्तक आदि पुरुषों को धन का लालच देकर राजा अपने वश में कर लें तब अनेक भाषायें बोलने वाली तथा उनके प्रकार के वेष बनाने वाली उनकी स्त्रियों को शत्रु के गुप्तचरों का वध करने अथवा उनको विषय-वासनाओं में फँसाने के लिए नियुक्त कर दें।[१०]

चाणक्य और चन्द्रगुप्त के जीवन-चरित्र तथा चाणक्य के राजनैतिक कौशल को प्रकट करने वाला संस्कृत का सुप्रसिद्ध नाटक है मुद्रराक्षस। इस नाटक के द्वितीय अध्याय में चाणक्य द्वारा चतुरतापूर्वक चन्द्रगुप्त को मारने के लिए शत्रु के द्वारा भेजी गई विषकन्या का प्रयोग पर्वतक के ऊपर करने का रोचक वर्णन है। चाणक्य अपने राज्य में इस प्रकार का प्रचार करा देते हैं कि पर्वतक की हत्या में उनकी कोई रुचि नहीं है और बड़े ही गुप्त रूप से विषकन्या का प्रयोग करके उसका वध करा देते हैं। तब राक्षस बड़ी दर्द भरी अभिव्यक्ति करता है- "मैंने चन्द्रगुप्त के वध के लिए जो विषमयी कन्या भेजी थी उससे

दुर्भाग्य पूर्वक पर्वतक मारा गया। मैंने शस्त्र और विष का प्रयोग करने के लिए जिन गुप्तचरों की नियुक्ति की थी, वे सारे गुप्तचर उन्हीं शस्त्रों से और विष से मारे गये।[11] जिस प्रकार चाणक्य ने विषकन्या के द्वारा पर्वतक का वध किया था, उसी प्रकार दुर्गादास नाटक में बताया गया है कि औरंगजेब ने जयसिंह के पुत्र को विषैली पोषाक पहनाकर ही मार डाला। राजपूतों के इतिहास में भी कुछ ऐसी रोमांचकारी घटनाऐं हुईं जिन्हें पढ़कर आश्चर्य होता है। अप्रतिम रूप लावण्य की स्वामिनी गानोर की रानी जब एक युद्ध में पराजित होने लगी तो शत्रु का दूत सेनापति खान का विवाह का प्रस्ताव लेकर पहुँचा। दरअसल, सेनापति रानी के सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया था। रानी ने समय की नाजुकता को पहचान सेनापति के प्रस्ताव को स्वीकार कर दो घंटे का समय मांगा और सेनापति के पास आभूषण-वस्त्रादि भेजे। उन्हें पहनकर प्रसन्नता में झूमता हुआ सेनापति रानी के पास पहुँचा। लेकिन जहाँ एक ओर वह रानी के सौन्दर्य को निहार रहा था वहीं दूसरी ओर उसका सम्पूर्ण शरीर भीषण गर्मी में झुलस रहा था। उसकी इस बेचैनी को देखकर रानी कहती है- "पंखा करने, जल छिड़कने और दूसरे सैकड़ों उपाय करने से भी कुछ न होगा। सेनापति अब तेरा अंतिम समय आ गया है। रानी के मौन होते ही सेनापति की दशा और भयानक हो उठी क्योंकि जिन वस्त्रों व आभूषणों को पहनकर वह महल में आया था उनमें विष का प्रयोग इस प्रकार किया गया था कि उनके पहनने के कुछ देर बाद शरीर से एक साथ आग प्रज्जवलित हो उठी और वह अचेत होकर गिर पड़ा। जिस समय उसके प्राण निकल रहे थे रानी तेजी से अपने महल की छत पर चढ़ गई और बहती हुई नदी में छलांग लगाकर अपने प्राण दे दिए।

मेवाड़ के इतिहास में ही कृष्णाकुमारी का प्रसंग इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उदयपुर के सिसोदिया वंश के राजा की पुत्री कृष्णा अपने सौन्दर्य के कारण सबके आकर्षण का केन्द्र थी। उसके विवाह को लेकर मेवाड़ के राजा जगत सिंह और मारवाड़ के एक राजा मानसिंह के मध्य भयानक वैमनस्य उत्पन्न हो गया। राणा स्वयं को विकट परिस्थिति में जानकर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गए और उन्होंने एक भयानक निर्णय लिया, अपनी पुत्री को विष देने का, जिससे की न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। राजकुमारी कृष्णा को विष देने का कार्य एक दासी को सौंपा गया। दासी ने राजकुमारी को विष के दो प्याले दिए जिन्हें उसने बिना किसी हिचकिचाहट के गले के नीचे उतार दिया किन्तु उसकी जीवनलीला समाप्त नहीं हुई। तब तीसरा विष का प्याला अफीम के साथ कुसुम्बे को मिलाकर दिया गया। जानते हुए भी कि यह मेरे जीवन का पूर्ण विराम सिद्ध होगा, राजकुमारी ने प्रसन्नता के साथ उसको पी लिया और जीवन लीला समाप्त कर दी। इस प्रकार अपने देश को बहुत बड़े संकट से बचा लिया। एक स्त्री के द्वारा राजकुमारी को विष देने का यह प्रसंग अत्यन्त हृदयस्पर्शी है।

विश्वविजय की कामना से भारत पर आक्रमण करने वाले सिकंदर के जीवन-चरित्र

में भी इसी प्रकार का एक विषकन्या का प्रसंग उल्लेखनीय है। रानी गुणवती को जब यह लगने लगा कि सिकंदर के कारण उनके साम्राज्य की सुरक्षा संकट में है तो उसने एक विष कन्या का निर्माण किया। जब सिकंदर ने रानी गुणवती के राज्य पर युद्ध करने के लिए शिविर लगाया तो उस विषकन्या को गुप्त रूप से सिकंदर के शिविर में प्रविष्ट करा दिया गया। उस रूपवती को देखकर सिकंदर कामातुर हो उठा और उसे आलिंगनबद्ध करने की चेष्टा कर ही रहा था कि उसके गुरु अरस्तू ने उसे ऐसा करने से रोक दिया। उसी समय दो दासों को बुलाकर उस युवती का चुंबन लेने का आदेश दिया। चुंबल लेते ही दोनों तड़प-तड़प कर मर गये। सिकंदर गुरु के समक्ष नतमस्तक हो गया और कन्या का सिर कटवाकर जलती आग में फेंकवा दिया।[१२]

इस प्रकार की अनेक घटनाएं इतिहास के विशाल उदर में समाई हुयी हैं जो इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि प्राचीन काल से अब तक नारी जाति का राजनीति में विभिन्न प्रकार से प्रयोग किया जाता रहा है। यह तो सर्वविदित है कि विपरीत लिंग के प्रति स्त्री अथवा पुरुष में स्वाभाविक आकर्षण होता है। मानव की इस दुर्बलता का लाभ राजनीतिज्ञों ने पूर्ण रूप से उठाया है अपने हितों को साधने के लिए और शत्रुओं के हितों को नष्ट करने के लिए नारी के सौन्दर्य का पूरा-पूरा उपयोग किया गया है। हमारे देश के प्राचीन धार्मिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक एवं चिकित्सा-शास्त्रीय ग्रन्थों के अध्ययन से यह प्रमाणित हो जाता है कि कहीं नारी को वास्तव में विषकन्या बनाकर शत्रु-पक्ष के राजा से आलिंगनबद्ध कराकर उसका नाश किया गया, तो कहीं नारी के विषैले मन के द्वारा। और उसकी श्रृंगारिक कराकर उसका नाश किया गया, तो कहीं नारी के विषैले मन के द्वारा। और उसकी श्रृंगारिक चेष्टाओं के द्वारा प्रतिपक्ष को आकृष्ट करके उसको ऐसे वश में कर लिया कि वह अपनी रक्षा और गोपनीयता को विस्मृत कर नष्ट हो गया। कूटनीतिज्ञों ने नारी के शरीर का पूरा-पूरा प्रयोग किया है। मनुष्य को समाप्त करने के लिए विष एक सबसे भयानक साधन है विष के संबंध में आयुर्वेद के ग्रन्थों में विस्तृत चर्चा है। विष के लक्षण, उसका प्रभाव, उसको दूर करने के साधन इत्यादि के विषय में भारतीय विद्वानों ने बहुत लिखा है। ऐसे भयानक पदार्थ को नारी के शरीर में डालकर उससे शत्रु को नष्ट करना एक भयावह राजनीतिक षड्यंत्र है।

वर्तमान युग में भी नारी देह का पूरा-पूरा प्रयोग किया जाता है। नारी में अत्यधिक अनुरक्ति, वेश्यागमन, विषय-वासना आदि से जहां बड़े-बड़े एड्स जैसे रोग फैल रहे हैं, वहां बड़े-बड़े राजाओं का पतन भी इससे होता है। अनेक शासनाध्यक्षों को इस बुराई के कारण अपने सिंहासन त्यागने पड़ते हैं। कुछ ही वर्ष पूर्व ब्रिटेन की क्रीस्टीन कीलर तथा भारत की सुन्दरी पामेला बोर्डेस की अनेक राजनीतिज्ञों के साथ शारीरिक संबंधों की चर्चा ने विश्व के राजनैतिक मंच पर सनसनी पैदा कर दी थी। ब्रिटेन के शासक एडवर्ड अष्टम्

द्वारा सिम्पसन नामक महिला के जाल में फंसकर राजसिंहासन को ठुकरा देना इसी प्रकार का एक उदाहरण है। आस्ट्रेलिया की एक महिला गुप्तचर बेंडी हालैण्ड ने विदेशी राजनयिकों नौकरशाहों एवं व्यापारियों से अपने संबंधों को स्वयं स्वीकार किया था। फ्रांस की अद्भुत सुंदरी माताहारी को किस प्रकार मोहरा बनाकर राजनैतिक हितों को साधा गया वह तो जगविदित है। भारत की सुरक्षा को गहरा आघात पहँचाने वाले और मुम्बई में विनाशलीला का ताण्डव-नृत्य कराने वाले दाउद इब्राहीम के साथ सिने-जगत् की प्रसिद्ध तारिकाओं के संबंधों ने हलचल मचा दी थी।

युद्धों के समय शत्रु-पक्ष के गूढ़ रहस्यों को जानने के लिए सुन्दर युवतियों को गुंप्तचर बनाकर भेजना और सेना के उच्चाधिकारियों के साथ क्लबों में नाचते हुए मदिरा और सौन्दर्य के नशे में उनको डुबोकर देश के सुरक्षा-विषयक दस्तावेजों को प्राप्त करना एक परम्परा-सी हो गयी है।

भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी के जीवन को समाप्त करने के लिए तमिल उग्रवादी संगठन लिट्टे ने जिस "धनु" नामक महिला को मानव बम के रूप में प्रयुक्त किया था क्या वह किसी विषकन्या से कम है ? पंजाब के मुख्यमंत्री बेअंत सिंह को मारने के लिए भी इसी प्रकार के मानव बम की व्यवस्था की गयी थी। इस प्रकार राजनीति में कुछ भी बुरा नहीं है, विजय पाने के लिए कोई भी उपाय किया जा सकता है, इस सिद्धान्त पर विश्वास रखने वाले कूटनीतिज्ञों ने प्राचीन काल से अब तक राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विष, विषकन्या, और नारी देह का भरपूर प्रयोग किया है और आगे इसी प्रकार से होता रहेगा।

पाद टिप्पणी

१. बृहत्-जातकालंकार, भुवन दीप अ० १९

२. विषैर्निहन्युर्निपुणं नृपतिं दुष्टचेतसः।
स्त्रियो वा विविधान् योगान् कदाचित्युभगेच्छया।।
विषकन्योपायोदा क्षणाज्जसादसून्नरः।
तस्मादेधेन सततं विषाद्रक्ष्यो नराधिपः।। सुश्रुतसंहिता, कल्पस्थानम् १,११५,६११

३. न च कन्यामविदितां संस्पृशेदपरीक्षिताम्।
विविधान्कुर्वते योगान् कुशलाः खलु मानवाः।
आजन्म विष संयोगात्कन्या विषमयी कृता।
स्पर्शोच्छ्वासादिभिर्हन्ति तस्यास्त्वेत्परीक्षणम्।। अष्टांग-संग्रह, सूत्रस्थानम्, अ०८

४. तन्मस्तकस्य संस्पर्शान्म्लायेते पुष्पपल्लवौ।
शय्यायां मत्कुणैर्वस्त्रे यूकाभिः स्नानवारिणा।। अष्टांग-संग्रह, सूत्रस्थानम्, अ० ८

५. रिपुयुक्तेभ्यो नृभ्यः स्त्रीभ्योऽथवा भयं नृपतेः।
आहार विहार गतं तस्मात्प्रेष्यान् परीक्षेत।।
चरक संहिता, चिकित्सास्थानम्, अ० २३

६. श्रीमद्भागवतमहापुराणम्, द्वितीय खण्ड, दशम स्कन्ध (पूवार्ध) ६,११५,६११

७. शीतं वासं समासाद्य श्रान्तो मदविमोहितः।
निश्चेष्टः पाण्डवो राजन्सुष्वाप मृतकल्पवत्।। महाभारत, आदि पर्व, ११९/३३

८. स्कन्धावारे वास्य शौण्डिकव्यञ्जनः पुत्रमभित्यक्तं स्थापयित्वा अवस्कंदकाले रसेन प्रवासयित्वा नैषेचनिकम् इतिः मदनरसयुक्तान् मद्यकुम्भामतशः प्रयच्छेत्। शुद्धं वा मद्यं माद्यं वा मद्यं दद्यादेकमहेः, उत्तरं रससिद्धं प्रयच्छेत्। शंद्धं वा मद्यं दण्डमुख्येभ्यः प्रदाय मदकाले रससिद्धं प्रयच्छेत्।

कौटिलीयं-अर्थशास्त्रम्, आबलीयस, १२,४,१११६६,१६७,११

९. अन्तगृर्हगतः स्थविरस्त्रीपरिशुद्धां देवीं पश्येत्। न कांचिदभिगच्छेत्। देवगृहे लीनो हि भ्रातः भद्रसेनं जघान। मातुः शय्यान्तर्गतश्च पुत्रः कारुशम्। लाजान्मधुनेति विषेण पर्यस्य देवी काशिराजम्। विषदिग्धेन नूपुरेण वैरन्त्यं मेखलामणिना सौवीरं जालूखमादर्शेन वेण्या गूढं शस्त्रं कृत्वा देवी विदूरथं जघान। तस्मादेतान्यास्पदानि परिहरेत्।

१०. संज्ञाभाषान्तरज्ञाश्च स्त्रियस्तेषामनात्मसु।
चारधातप्रमादार्थ प्रयोज्या बन्धुवाहनाः।। कौटिल्य अर्थशास्त्र, अ० २०

११. कन्या तस्य बधाय या विषमयी गूढं प्रयुक्ता मया देवात्पर्वतकस्तया स निहतो यस्तस्य राज्यार्धहृत्। ये शस्त्रेषु रसेषु च प्रणिहितास्तैरेव ते घातिता..............।
मुद्राराक्षस अ० २

१२. गेस्टा रोमानोरम् ११वीं कहानी।

आचार्य सायण और उनकी वेदभाष्य शैली

-डॉ० दिनेशचन्द्र शास्त्री

माधव, स्कन्दस्वामी, उव्वट और महीधर आदि भाष्यकारों के भाष्य के अतिरिक्त प्राचीन भाष्यों में आचार्य सायण का भाष्य उपलब्ध होता है। इसकी उपयोगिता एवं महत्व पर A.A. Macdonell ने अपने प्रसिद्ध 'A History of Skt. Literature' नामक ग्रन्थ में लिखा है- **"The interpretations of these hymns was therefore at the out set farred by almost insurmountable difficulties. Fortunately, however, a voluminious commentry on the Rigveda which explains or para-phrases every would of its hymns, was found to existance. This was the work of great Vedic-Scholar Sayana, who lived in the latter half of the fourteenth century A.D. at vijayanagara,........."**

चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सायण आचार्य द्वारा किया गया यह भाष्य पाण्डित्य के एक महान् प्रयत्न का द्योतक है। यद्यपि विस्तार में जाने पर इसमें कई असंगतियां दीखती हैं तो भी सामान्य रूप में यह संगत है। यह एक सुव्यवस्थित योजना के आधार पर सरल तरीके से एक ऐसी शैली में रचा गया है जो स्पष्ट होने के साथ-साथ संक्षिप्त भी है। समूह रूप से सायणाचार्य सदा कर्मकाण्डविधि में ही व्यस्त रहते हैं और निरन्तर वेद के आशय को बलपूर्वक कर्मकाण्ड के संकुचित सांचे में ढालकर वैसा ही रूप देने का प्रयत्न करते हैं। परिणामत: सायणाचार्य द्वारा वैदिक विचारों एवं भावनाओं का एक ऐसा प्रतिनिधित्व हुआ है जो इतना संकुचित एवं दारिद्र्योपहत है कि यदि उसे स्वीकार कर लिया जाय तो वह वेद के सम्बन्ध में प्राचीन आदरभाव को, उसकी प्राथमिकता को, तथा उसकी दिव्य ख्याति को कुछ अबुद्धिगम्य कर देता है।

इस भाष्य में कर्मकाण्ड के अतिरिक्त अन्य तत्व (पहलु) अपेक्षाकृत गौण रूप लिये हुये हैं। सम्भवत: सायणाचार्य के भाष्य करने के समय प्राचीनकाल से चले आ रहे अनेकों तत्व और परम्पराएं विद्यमान थीं, इनमें से कुछ को उन्होंने नियमित स्वीकृति देकर कायम रखा, और कुछ को अस्वीकार कर दिया।

१. प्रथम तत्व **वेदों की प्राचीन, आध्यात्मिक, दार्शनिक अथवा मनोवैज्ञानिक व्याख्याओं का अवशेष** है। उपनिषदें इसकी मुख्य सहायक हैं। सायण भी कुछ अंश तक इन्हें स्वीकार करते हैं, परन्तु मात्रा की दृष्टि से अपेक्षाकृत ये इतनी कम हैं कि इसका स्थान सायणभाष्य में अपवादात्मक ही प्रतीत होता है। कहीं कहीं प्रसंगवश सायणाचार्य आध्यात्मिक अर्थों का चलते-चलते स्पर्श कर जाते हैं या उन्हें स्वीकृति दे देते हैं। जैसे 'वृत्र' की उस प्राचीन व्याख्या का सायणाचार्य ने उल्लेख किया है (पर उसे स्वीकार करने के लिए नहीं) जिसमें

'वृत्र' वह आच्छादक तत्व है जो मनुष्य के पास पहुंचने से उसकी कामना एवं अभीप्सा की वस्तुओं को रोके रखता है। इस व्याख्या का उल्लेख करते हुए भी प्रधान रूप से सायणाचार्य के लिए तो वृत्र या तो केवल काम शत्रु है, या भौतिक मेघ रूपी असुर है, जो जलों को रोके रखता है, और जिसका वर्षा करने के लिए इन्द्र को भेदन करना पड़ता है।

२. दूसरा तत्व है **गाथात्मक**। देवताओं के केवल मात्र बाह्य स्वरूप को स्पर्श करती हुई गाथाएं दी गई हैं। परन्तु उनके उस अन्तर्निहित आशय को, जो कि समस्त गाथाओं के औचित्य को सिद्ध करने वाला है, और जिसका आविर्भाव ब्राहण आदि ग्रन्थों में सम्भवत: विषय को रोचक तथा सरल बनाने के लिये किया गया है, छोड़ दिया गया है। और यों जिसके लिये प्रयत्न था उस मूल आशय को छोड़कर प्रयत्न को ही आशय के रूप में स्वीकार कर लिया गया है।

३. **आख्यानात्मक अथवा ऐतिहासिक**। इसमें प्राचीन राजाओं अथवा ऋषियों की कहानियां हैं। जो वेद के अस्पष्ट वर्णनों का स्पष्टीकरण करने के लिए ब्राह्मण ग्रन्थों में दी गई हैं या उत्तरकालीन परम्परा के द्वारा आई हैं। विद्वानों के अनुसार यह तत्व सातवीं आठवीं शताब्दी ई०पू० से भी पहले से चला आता है। इसका उस समय (७वीं, ८वीं ई० पू०) इतना प्राधान्य रहा कि ऐतिहासिक अर्थ करने वालों का एक स्वतंत्र सम्प्रदाय ही बन गया। इसकी सम्पुष्टि यास्काचार्य प्रणीत निरुक्त में अनेक बार आये "इति ऐतिहासिका:", तथा स्कन्दस्वामी द्वारा किए गये ऋग्वेद १-१-६ के भाष्य में आये "एवं ह्यैतिहासिका: स्मरन्ति" इत्यादि वाक्यांशों से होती है। ऐतिहासिक अर्थों का खण्डन यास्काचार्य जैसे प्रामाणिक पण्डित ने प्राय: सभी स्थलों पर किया है। सायणाचार्य का बर्ताव भी इस तत्व के साथ कुछ हिचकिचाहट से पूर्ण है। बहुधा वे उन्हें मन्त्रों की उचित व्याख्या के रूप में ले लेते हैं। कभी-कभी वे विकल्प के रूप में एक दूसरा अर्थ भी देते हैं, जिसके साथ उनकी अपनी अधिक बौद्धिक सहानुभूति प्रतीत होती है। परन्तु उन दोनों में से किसे प्रामाणिक माना जाये इस निर्णय में वे दोलायमान हैं। पूर्वमीमांसाकार जैमिनि वेद के शब्दों को नित्य मानते हैं, और इसी प्रमाण के आधार पर सायणाचार्य ने अपने ऋग्वेद भाष्य के उपोद्घात प्रकरण में स्पष्ट रूप से ऐतिहासिकता का खण्डन किया है। वेदमन्त्रों में प्रतीत होने वाले नामों को वे व्यक्तिविशेष का वाचक न मानकर सामान्य वाचक मानते हैं। इस प्रसंग में सायणाचार्य पूर्वोत्तर पक्ष पूर्वक जैमिनि को उद्धृत करते हैं- "बबर: प्रावाहणिरकामयत" इत्यादीनां बबरादीनामर्थानां दर्शनात् तुत: पूर्वमसत्त्वात् पौरुषेयो वेद इति। तस्योत्तरमेकं सूत्रितम् परं तु श्रुतिसामान्यमात्रम्' (जै०सू० १-१-३१) इति। तस्यायमर्थ:। यत्काठकादि समाख्यानं तत्प्रवचन निमित्तम्। यत्तु परं बबराद्यनित्यदर्शनं तच्छब्द सामान्यमात्रम्। न तु तत्र अनित्यो बबराख्य: कश्चित्पुरुषो विवक्षित:। किन्तु बबर इति शब्दानुकृति:। तथा सति बबरेति शब्दं कुर्वन् वायुरभिधीयते।"

इस उद्धरण को अपने उपोद्घात में लिखकर सायणाचार्य ने यह दर्शाया है कि वेदों में अनित्य इतिहास नहीं है। परन्तु अपने भाष्य में उन्होंने यत्र-तत्र अनित्य ऐतिहासिक अर्थ भी कर दिये हैं। इस प्रकार अपने ही बनाए हुए सिद्धान्त पर सायणाचार्य सर्वत्र स्थित न रह सके।

४. इन सब तत्वों के होते हुए भी, जो तत्व व्यापक रूप से सारे भाष्य पर छाया हुआ है वह है कर्मकाण्ड का विचार। सम्पूर्ण भाष्य का यही स्थिर स्वर है, जिसमें अन्य सब पहलु अपने आपको खो देते हैं। आधुनिक युग के प्रसिद्ध विचारक श्री अरविन्द के शब्दों में हम कह सकते हैं- "वेद के सब सम्भव अर्थों में से इस निम्नतर अर्थ के साथ ही वेद को अन्तिम तौर पर और प्रामाणिकतया बांध देना, यह है जो कि सायण के भाष्य का सबसे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम हुआ। कर्मकाण्ड परक व्याख्या की प्रधानता ने पहले ही भारतवर्ष को अपने सर्वश्रेष्ठ धर्मशास्त्र (विद) के सजीव उपभोग से और उपनिषदों के समस्त आशय को बताने वाले सच्चे मूल सूत्र से वञ्चित कर रखा था। सायण के भाष्य ने पुरानी मिथ्या ध ारणाओं पर प्रामाणिकता की मोहर लगा दी.......... और इसके दिये हुए निर्देश उस समय जब कि एक दूसरी सभ्यता ने वेदों को ढूंढ़कर निकाला और इसका अध्ययन प्रारम्भ किया, युरोपियन विद्वानों के मन में नई-नई गलतियों के कारण बने।"

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार-२४९ ४०४ (उ०प्र०)

गुरु जम्भेश्वर महाराज का आचार-दर्शन

डा० किशनाराम विश्नोई
गुरु जम्भेश्वर विश्वविद्यालय, हिसार

जम्भावाणी गुरु जम्भेश्वर महाराज के मुख से उच्चरित 'सबदों' का सामूहिक नाम है। जम्भवाणी में सिद्धान्त से ज्यादा आदर्श को अपनाया गया है तथा चिंतन की अपेक्षा व्यावहारिकता को अधिक महत्व प्रदान किया गया है। इसलिए चिंतन और सिद्धान्त पक्ष की अपेक्षा आदर्श और व्यवहार को जम्भवाणी का मुख्य आधार माना है। आदर्श और व्यवहार को जम्भवाणी का मुख्य आधार माना है। आदर्श और व्यवहार का समन्वय करके एक ऐसी जीवन पद्धति का विकास किया गया है जिसमें मनुष्य अपना आन्तरिक विकास करते हुए अपना स्वरूप ज्ञान प्राप्ति में संलग्न कर सके। स्वस्थ जीवन प्रक्रिया के लिए जीवन सत्य का ज्ञान और उसे प्राप्त करने का सफल प्रयास आवश्यक है। सत्य को वे जीवन के विविध पक्षों में अपनाने की प्रेरणा देते हैं। दूसरे शब्दों में सत्य को वे अनावृत रूप से देखना और दिखाना चाहते हैं। इसलिए धर्म के नाम पर फैले सभी प्रकार के आडम्बरों और रूढ़ियों का जमकर विरोध किया है। आडम्बर और लोक-प्रदर्शन सत्य के वास्तविक स्वरूप को आवृत कर देते हैं। इसलिए गुरु जम्भेश्वर जी ने अपनी वाणी में बाह्य आडम्बर का विरोध किया है :-

"थे कांन चिरावौ चिरघट पहरौ, पाखण्ड पोह न कोई
जटा वधारौ जीव सिंधारौ, आयसां ! इहा पाखंड जोग न होई।"१

गुरु जम्भेश्वर जी ने कान चिराना, कथा पहनना, सिर पर जटा बढ़ाना एवं जीव हत्या करने वाले लोगों पर गहरा प्रहार किया है। ऐसे कार्य करने वाले योगी न होकर मात्र पाखंडी है। अधिकांश लोग ऐसे बाह्य प्रदर्शनों एवं लोक प्रदर्शनों में उलझ कर रह जाते हैं इनको आन्तरिक सूक्ष्म तत्व का कोई ज्ञान नहीं है भीतरी सत्य इनका विलुप्त हो जाता है अर्थात् भीतरी सत्य को पहचानने की क्षमता इनमें नहीं है।

यह आन्तरिक सत्य क्या है ? जिसको मनुष्य विस्मृत कर देता है। यह वह परमसत्य है जिसमें जीव का ब्रह्म के साथ तादात्म्य निर्धारित किया जाता है किन्तु माया के बंधन में पड़कर अपना वास्तविक स्वरूप भूल गया है। विषयों का सांसारिक आकर्षण मनुष्य में इतना प्रबल हो गया है कि इनसे बच पाना अत्यन्त दुष्कर है। सामान्यत: मनुष्य सांसारिक विषय वासनाओं में अपने को संलिप्त करके उनके पीछे दौड़ता रहता है। किन्तु सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। जैसे-जैसे विषय-वासनाओं का आकर्षण बढ़ता जाता है तब मनुष्य अपना वास्तविक स्वरूप भूल जाता है।

---

1. **शब्दवाणी जम्भसागर, पृ0 109**

गुरु जम्भेश्वरजी ने संशयग्रस्त और भ्रम में पड़े हुए लोगों को चेतावनी देते हुए कहा है कि-

"भरमी भूला बाद बिवाद।
अचार बिचार न जाणत स्वद।।"१

दिग्भ्रान्त मनुष्य जीवन की वास्तविकताओं से अनभिज्ञ रह जाता है। वास्तविक ज्ञान से अपरिचित रहने पर मनुष्य पतन की ओर अग्रसर हो जाता है, पतनशील मनुष्य इस संसार-सागर में अनेक प्रकार के कष्ट भोगता है इनमें सबसे प्रमुख है- काम, निंदा, स्तुति, सम्मान की आकांक्षा, जाति, कुल, वर्ग, रूप, यौवन इत्यादि का मनुष्य को अभिमान रहता है। ये सभी माया से उत्पन्न विकृतियां हैं। ये सभी मिलकर मनुष्य का वास्तविक सत्य ज्ञान नष्ट कर देते हैं। ऐसे लोग जीवन की वास्तविकता से अनभिज्ञ रह जाते हैं। माया के बंधन में पड़े हुए जीवन निंदा, स्तुति, मान-अभिमान में असत्य होकर जीव के ज्ञान को विनष्ट कर दिया है इस माया ने अनेक प्रकार से संसार को भ्रम में डाल दिया और सत्य को छिपा लिया है। गुरु जम्भेश्वर की भांति कबीर भी माया-मोह से ग्रस्त जीव को चेतावनी देते हुए कहते हैं:-

"निंदा अस्तुति, मान-अभिमाना, इन झूठे जीव हत्या विग्याना।
बहु विधि करि संसार भुलावा, झूठे दोजगि सांच लुकावा।
माया मोह धन जोबना, इनि बँधे सब कोई।
झूठे झूठे बिचाचिया, अलख लखे नहीं कोई।"२

श्री गुरु ग्रंथ साहिब में मोह और ममता युक्त जीव को समझाते हुए गुरु नानक कहते हैं कि हे जीव तुम-

"मूड़े रामु जपहु गुण सारि।
हउमै ममता मोहणी सभ मुठी अहंकारि।।

मुई परीति पिआरु गइआ मुआ वैरू विरोधु।
धंधा थका हउ मुई ममता माइआ क्रोध।।३

अपने व्यक्तित्व में गुणों का विकास कर और अवगुणों को समाप्त करके ईश्वर का नाम-स्मरण कर। यह सम्पूर्ण संसार मोह, ममता और अहंकार से युक्त है इन विकृत तृष्णाओं को त्यागकर मन पर संयम रख, इन्द्रियों को वश में कर काम, क्रोध, लोभ, मोह और माया से दूर रहकर अपने चित्त को स्थिर कर, स्थिर चित्त ही शुद्ध और निर्मल है

---

1. **शब्दवाणी जम्भसागर, पृ0 86**
2. **कबीर ग्रन्थावली, सम्पादक, पृ0 91**
3. **श्री गुरुग्रन्थ साहिब, अनु. डॉ0 मनमोहन सहगल, पृ0 90 सिरीरागु मंहला 1**

जिसमें जीवन की सत्यानुभूति निहित है। इसलिए इन मनोविकार ग्रस्त विकृतियों से अलग होकर चित्त को स्थिर कर ले। क्योंकि चित्त का शुद्धिकरण जीवन की सत्यानुरूप प्रवृत्तियों को ग्रहण कर लेता है इसलिए इस क्षणभंगुर जीवन में मनुष्य को रूप, रंग, वर्ग, जाति, मत, सम्प्रदाय, कुल, मान-सम्मान की प्रतिष्ठा के अभिमान से बचाना चाहिये क्योंकि इसमें किसी भी वस्तु का स्थायित्व नहीं है। समयानुरूप सभी लोगों को इस जीवन से अलग होना निश्चित है। इस मायावी जगत् में कोई भी चिरस्थायित्व नहीं रहेगा। इसी प्रसंग में गुरु जम्भेश्वर महाराज कहते हैं कि-

"ओ३म् कवण न हूवां कवण न होयसी
किण न सहग दु:ख भारु
कवण न गइया कवण न जासी
कवण रह्या संसारु

अनेक अनेक चलंता दीठा
कलि का मागस कौन विचारुं।।

जो चित होता सो चित नहीं।
भल खोटा संसारु।
किसकी माई किसका माई।
किसका पख पखारुं।
भूली दुनिया मर मर जावै।
न चीन्हो करतारूं।।"[१]

गुरु जम्भेश्वर जी की मान्यतानुसार इस भौतिक जगत में कोई भी चिरस्थायी और शाश्वत नहीं रहेगा, यहाँ पर कई-कई ऋषि-महर्षि चले गये और जो भविष्य में होंगे वे भी चले जायेंगे, किन्तु कलियुग के मनुष्य की बात ही क्या है ? वह तो किसी भी समय इस संसार से चला जायेगा, यहां पर माता-पिता, भाई-बहन, परिवार आदि भी चिरस्थायी नहीं रहेंगे, भ्रमित दुनिया आवागमन के चक्कर में फंसी हुई है तथा जीवन-मृत्यु के चक्कर में बंधा हुआ मनुष्य ईश्वर को पहचान नहीं सकता। यह जीवन गहिला, बावरा और दीवाना होकर अमृतादि को तजकर विषपान में लगा रहता है विषय-वासना व आसक्ति आदि में दतचित रहता है-

जीव गहिला जीव बांवला, जीव दिवाना होइ।
दादू अमृत छांड़ि करि-विष पीवै सब कोई।।[२]

---

1. शब्दवाणी जम्भसागर, पृ0 94-95
2. दादूवाणी, पृ0 243/125

भौतिक धन-सम्पत्ति के मद में डूबे हुए लोगों को समझाते हुए गुरु जम्भेश्वरजी कहते हैं यह शरीर रूपी पींजरा अत्यन्त पुराना पड़ गया है इस नाशवान शरीर को पाकर अभिमान नहीं करना-

"काचै पिडे किसी बडाई
भोलै भूल अयांणो।"[1]

चाहिये। मृत्यु के आगे किसी का भी वश नहीं चलता है। इस जगत् से देव और दानवों को जाना पड़ा था।

"म्हां देखंता दव दाणु
सुर नर खीना।
बीच गया बेराणो।।
कुंभकरण महरावण होता।
अबली जोध अयाणों।।"[2]

कुंभकरण और महिरावण इत्यादि पराक्रमी यौद्धा भी इस संसार से चले गये, सामान्य मनुष्य की तो बात ही कया है।

कोट लंका गढ विषमा होता।
कांयंदा बस गया रावण राणो।।
नौग्रह रावण पाए बन्ध्या।
तिस बीह सुर नर शंकर भयाणो।।
ले जम कालें अति बुधवंतो।
सीता काज लुंभाणो।।
भरमी बादी अति अहंकारी।
करता गरब गुमानो।।
तेऊ तो जम काले खीणां।
थीर न लाधो थाणो।।[3]

लंकापति रावण अद्वितीय, बलवान् और अनेक विद्याओं में पारंगत यौद्धा था काल के आगे उसका भी वश नहीं चला था। रावण वाद-विवादी अत्यधिक अहंकारी और लोभी व्यक्ति था मृत्युरूपी काल ने उसको भी विनष्ट कर दिया। इस प्रकार गुरु जम्भेश्वरजी ऐतिहासिक चरित्रों द्वारा यह सिद्ध करना चाहते हैं कि यह संसार नाशवान् और क्षणभंगुर

---

1. **शब्दवाणी जम्भसागर, पृ0 187**
2. **शब्दवाणी जम्भसागर, पृ0 188**
3. **शब्दवाणी जम्भसागर, पृ0 188**

है इसमें किसी का भी अस्तित्व अखण्ड नहीं रहेगा। इसलिए विषय भोगों में और विकृत प्रवृत्तियों से इसे बचाकर रखना है तभी मानव जीवन की सच्ची सार्थकता है। इस मानव जीवन को व्यर्थ में नष्ट नहीं करना है। इसकी उपयोगिता परमतत्व के साक्षात्कार कने में है। जो व्यक्ति विष्णु का आश्रय ग्रहण करता है उसे विषयों का आकर्षण अपने बंधन में नहीं बांधता है।

गुरु जम्भेश्वरजी इन विषय-भोगों से पृथक रहने के लिए एक सहज साधना पर चलने का सदुपदेश देते हैं। अत: सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह सहज साधना क्या है ? इसका विषय क्या है ? साधना करने में सबसे बड़ी बाधा कौन सी है ? इस बाधा पर किस प्रकार विजय प्राप्त की जा सकती है ? "सत्य की शोध में निरन्तर दत्तचित्त रहना या सत्यसिद्धि की अवस्था में तल्लीन रहना "साधना" है सत्य से तथ्य की खोज करना, जानकारी प्राप्त करना और अंततोगत्वा उसे प्राप्त करना साधना का विषय है। अत: साध्य की प्राप्ति तक के किये गये सारे प्रयत्न, लक्ष्य को प्राप्त करने तक किये गये सारें प्रयास और अपने गन्तव्य को प्राप्त करने तक की गयी सारी कोशिशें साधना के ही अन्तर्गत आती हैं।" १ इस प्रकार सरल शब्दों में यह कह सकते हैं कि मनुष्य मात्र के सम्पूर्ण प्रयास व प्रयत्न जो उसे अपने निर्दिष्ट गंतव्य की प्राप्ति करने में सहायक होते हैं, वे साधना के अन्तर्गत आते हैं।

प्राणिमात्र की स्वरुचि भिन्न-भिन्न होती है इसलिए उनकी साधनाएं भी अनेक प्रकार की होती हैं। फिर भी ये साधनाएं अपने आप में पूर्ण होती हैं। अतएव किसी एक साधना को या साधना के प्रकार को ही सर्वथा सर्वोत्तम या सर्वश्रेष्ठ मान बैठना, साधना की व्यापकता की अवहेलना करना है इसी के परिणाम स्वरूप समाज में विभिन्न सम्प्रदाय आपसी संघर्ष और वैमनस्य में उलझकर समाज और राष्ट्र को नुकसान पहुँचाते हैं। तथा परस्पर समाज में विघटन की भावना उत्पन्न होती है।

गुरु जम्भेश्वर जी सहज साधना पर विजय प्राप्त करने से पहले मन को सबसे बड़ी बाधा मानते हैं। परमार्थ साधना में मन पर संयम रखना अत्यावश्यक है, यह मन स्वभावत: चंचल और विषयों के प्रति आकर्षित होना इसका स्वभाव है। यह मन ही इन्द्रियों विषयों की ओर प्रेरित करता है अत: सहज साधना की प्राप्ति से पहले मन को नियंत्रित करना अनिवार्य है। यह मन ही बंधन और मुक्ति का कारण है। "कबीर ने भी आत्मा की मुक्ति के लिए मन पर नियंत्रण आवश्यक माना है।" २ मन पर पूर्ण

1. **संतकवि दादू, डॉ० कृष्णवल्लभ दवे, पृ० 113, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्र०सं.1983**
2. **कबीर की प्रगतिशील चेतना, डॉ० जगदीश्वर प्रसाद पृ० 116**

नियंत्रण प्राप्त कर लेने वालों को सांसारिक उद्वेग अपनी ओर आकृष्ट नहीं करते। इसलिए गुरु जम्भेश्वरजा ने मन पर नियंत्रण करने वालों को पृथ्वी पर सबसे ज्यादा शूरवीर राजा माना है।

"है कोई आछै मही मंडल शूरा।
मन राय सूं झूझ रचायले।।१
काया पत नगरी मन पत राजा।
पञ्च आत्मा परधारूं।।२

इन शरीर रूपी नगरी का मनरूपी रावण राजा है इस मनरूपी राजा से युद्ध करके फिर विजय प्राप्त कर लेता है। वह इस पृथ्वी का सबसे श्रेष्ठ शूरवीर योद्धा हो सकता है। मन को नियंत्रित करने पर इन्द्रियां स्वत: ही नियंत्रित हो जाती हैं। सहज साधना का यह प्राथमिक विषय है। सहज साधना का प्राथमिक सोपान प्राप्त हो जाने के उपरान्त द्वितीय सोपान में द्विविधा वृत्ति को त्यागने का उपदेश गुरु जम्भेश्वरजी ने अपनी वाणी में उद्घाटन किया है-

"ओ३म् दोय मन दोय दिल सिंवि न कंथा।
दोय मन दोय दिल पुली न पंथा।।
दोय मन दोय दिल कहीं न कथा।
दोय मन दोय दिल सुणी न कथा।
दोय मन दोय पंथ दुहेला।
दोय मन दोय दिल गुरु न चेला।।
दोय मन दोय दिल बंधी न बेला।
दोय मन दोय दिल रब्ब दुहेला।।
दोय मन दोय दिल सूई न धागा।
दोय मन दोय दिल भिड़े न भागा।।
दोय मन दोय दिल भेव न भेऊ।
दोय मन दोय दिल टेव न टेऊँ।
दोय मन दोय दिल केल न केला।
दोय मंन दोय दिल सुरग न मेला।।"३

द्विविधा की स्थिति में परस्पर किसी सिद्धान्त, आदर्श या व्यवहार या चिंतन का

1. शब्दवाणी जन्भसागर, पृ0 239
2. शब्दवाणी जन्भसागर, पृ0 239
.3. शब्दवाणी जन्भसागर, पृ0 111–113

आपसी तारतम्य या सामंजस्य नहीं बैठता है। द्विविधा वृत्ति में मन पर कठोर संयम या संकल्प नहीं रखा जा सकता। इन्द्रियों को नियंत्रित नहीं किया जाता, आचरण को सहजता को परिवर्तन नहीं किया जा सकता, जब तक आचरण सहजता में परिवर्तन नहीं होगा तो इन्द्रियां नियंत्रित नहीं हो सकती। आचरण में ही सहजता को अपना कर इन्द्रियों को स्वस्थ दिशाओं में अग्रसर किया जा सकता है। किसी भी असाधारणता या असामान्यता को त्यागना ही सहजता है। कबीर की दृष्टि में जो इन्द्रियों को सहजता में ही नियंत्रित कर लेता है। वही सहज को पहचानता है।

"सहज सहज सबकौ कहै सहज न चीन्हे कोय।
पांचू रखै परसती, सहज कही नै सोच।"१

सहजता में ही शील, संयम और संतोष को प्राप्त कर लेना व्यक्ति की उच्चादर्शता है।

सहजै सहजै सब गए, सुत बित कामिणि काम।
एकमेव हे मिलि रह्या, दासि कबीरा राम।२

गुरु जम्भेश्वरजी ने आचार पक्ष में कर्म का महत्वपूर्ण माना है, केवल सिद्धान्त की बातें करना नहीं। सिद्धान्त का व्यावहारिक जगत में तभी उपयोग है जब उसको व्यावहारिक रूप में परिवर्तन किया जाय। जो बातें मुंह से कहे उसको करके दिखाना तभी सिद्धान्त का महत्व है। जिनकी कथनी और करनी में तादात्म्य नहीं है। वे कभी भी व्यावहारिक नहीं हो सकते।

गुरु जम्भेश्वर अपने कर्ममय सिद्धान्त में कथनी और करणी के विभेद को स्वीकार नहीं करते हैं। जो कुछ भी कहा जाय उसे किया जाय।३ इस प्रकार व्यक्ति मात्र के लिए यह आवश्यक है कि वह जो कुछ कहे उसे व्यवहार या आचरण में भी लाये। क्योंकि केवल कहने मात्र से किसी काम में सिद्धि या सफलता कदापि नहीं मिल सकती और न ही किसी वस्तु की प्राप्ति होता है। कर्म के आगे पुस्तकीम ज्ञान की कोई महत्ता नहीं है। मनुष्य को प्रत्येक क्षण कर्म करते रहना चाहिये। अपनी आजीविका के लिए निरन्तर कार्य करते हृदय से विष्णु का नाम जपो।

"हिरदै नांव विसन को जपौ हाथे करो टबाई।"

कर्म के संबंध में गुरु जम्भेश्वरजी ने सत्य आचरण और सत्संगति पर विशेष बल दिया है यदि हृदय की सच्चाई है तो परमात्मा के निकट पहुंच कर अपने कर्मों का हिसाब देने में

1. **कबीर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ0 87**
2. **कबीर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ0 133**
3. **पहलु किरिया आप कुमाइयै, तो अवरां नै फुरमाइयै। ज0वा0 28**

कोई समस्या नहीं होगी। गुरु जम्भेश्वरजी ने असत्य आचरण करने वाले काजी, पंडित, मुल्ला, पीर, दिगम्बर, नाथ आदि लोगों पर गहरा प्रहार किया है।२ तथा उनको सत्य आचरण चलने की प्रेरणा दी है। सत्य आचरण से यहां यह तात्पर्य है कि जिस आचरण से परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है वही सत्याचरण है। धार्मिक आडम्बरों और रुढ़िवादी विचारों से अलग रहकर सत्य का आचरण करना चाहिये। सहज साधना में सत्संग का भी विशेष महत्व है। सत्संग सत्य आचरण के समान साधना का सरलतम सोपान है सच्चे यौगिकों या साधकाकें की संगति से ही व्यक्ति, के अवगुण स्वत: ही नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य के स्वभाव पर संगति का विशेष प्रभाव पड़ता है मनुष्य जैसी संगति में बैठता है वैसी ही उनका स्वभाव बनता है। अत: दुष्टों की संगति से बचना चाहिये, दुष्टों की संगति मनुष्य का पतन कर देती है। इसलिए हमेशा साधु पुरुषों की संगति करनी चाहिये एवं प्रभु का साक्षात्कार करना चाहिये। सिद्ध एवं साधुओं के साथ रहने वाला मनुष्य मुक्ति प्राप्त करता है-

"सिध साधक को एक मतो,
जिन जीवन मुक्त दृढ़ायों।"१

गुरु जम्भेश्वर ने अपनी सहज जीवन पद्धति में कर्ममय जीवन की साधना के साथ-साथ ईश्वर में पूर्ण विश्वास बनाये रखने की प्रेरणा दी है। व्यावहारिक जीवन में गुरु जम्भेश्वरजी ने मनुष्य को मधुर बाणी बोलने संतोष से रहने, शील का पालन, नैतिकता, हक और न्याय की आजीविका प्राप्त करने, यदि आपके पास थोड़ी सी वस्तु हो तो मांगे जाने पर थोड़ी सी अवश्य देनी चाहिये।

"थोड़ै मांहि थोड़े सै दीजै
होतै नांहि न कीजै।" २

गुरु महाराज की मान्यतानुसार पास में वस्तु के होते हुए मांगे जाने पर उसे देने से इन्कार नहीं करना चाहिये। दूसरे से मधुर संबंध स्थापित करने के लिए मधुर बाणी बोलनी चाहिये। कठोर या कटु वाणी पारस्परिक आपसी द्वेष उत्पन्न कर देती है। और संघर्ष तथा वैमनस्य की भावना बढ़ा देती है। इस प्रसंग के संदर्भ में कबीर ने अपने मत को उद्धृत करते हुए कहा है कि-

"ऐसी वाणी बोलिये, मन का आपा खोय।
अपना तन शीतल करै, औरन को सुख होय।।"३

---

1. **शब्दवाणी जम्भसागर, पृ0 241**
2. **जम्भवाणी सबद सं0 54**
3. **कबीर ग्रन्थावली, पृ0 238**

बाणी ऐसी बोलनी चाहिये जिससे स्वयं को भी संतुश्टि होवे तथा हृदय भी शीतल होवे एवं दूसरों को भी सुख देने वाली हो।

गुरु जम्भेश्वरजी ने अपनी वाणी में मनुष्य को न्यांय और हक आजीविका चलाने की शिक्षा दी है। अन्याय से कमाया गया धन दीर्घकाल तक नहीं रह सकता है। न्याय से प्राप्त किये गये धन में से ही दान देना चाहिये। दान भी ऐसे व्यक्ति को देना चाहिये जो उसका सही उपयोग कर सके। कुपात्र व्यक्ति को कभी भी दान नहीं देना तथा सुपात्र और शुभ कर्म करने वालों को ही दान देना चाहिये।

"ओ३म् कुपात्र कूं दान जु दीयो।
जाणै रैण अंधेरी चोर जु लीयो।।
चोर जु लेकर भाखर चढ़ियो।
कह जिवड़ा तै कने दीयों।।
दान सुपाते बीज सुखेते।
अमृत फूल फलीजै।।१

कुपात्र मनुष्य को दान देना चोर का धन देने के समान है। गुरुमुखी भाव से अर्थात् निष्काम भाव से दिया गया दान अमृत के समान है जिसकी चहुमुखी वृद्धि होती है। ऐतिहासिक दृष्टांतों द्वारा गुरु जम्भेश्वर महाराज ने यह सिद्ध कर दिया था कि राजा कर्ण ने मनमुखी (सकामभाव) भाव से दान दिया था और विदुर ने गुरुमुखी भाव (निष्कामभाव) से दान दिया था राजा कर्ण को तो तंपिस मृत्यु लोक में आना पड़ा था और विदुर को स्वर्ग प्राप्ति हुई थी।

"मन मुख दान जु दीन्हों करणै।
आवागवण जु आइये।।
गुरुमुख दान जु दीन्हों बिदरै।
सुर की रागा रागाइये।।"२

दान तो कर्ण और विदुर दोनों ने दिया था परन्तु दान देने का लक्ष्य पृथक्-पृथक् था इसलिए गुरुमुखी भाव से दिया दान अमृत के समान सार्थक साबित हुआ। तथा मनमुखी भाव से दिया गया दान निरर्थक साबित हो गया। इस प्रकार गुरु जम्भेश्वर महाराज की आचार पद्धति विभिन्न आयामों को प्राप्त करती हुई मनुष्य को सहज जीवन पद्धति की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है। उनकी दृष्टि में मानव इस आचार पद्धति का अनुशरण

---

1. शब्दवाणी जम्भसागर, पृ0 135
2. शब्दवाणी जम्भसागर, पृ0 88

करके मुक्ति का मार्ग प्राप्त करता है। वह विषय-वासनाओं के जाल में न उलझकर भक्ति रस का आनन्द प्राप्त करना उनका मुख्य लक्ष्य है। वह ईश्वर की शरणागति को स्वीकार करता है। ईश्वर के चरणों का आश्रय मनुष्य को सभी प्रकार के कष्टों से मुक्ति दिला सकता है।

गुरु जम्भेश्वरजी की आचार पद्धति विषय वासनाओं पर नियंत्रण करने के लिए मन पर विजय प्राप्त करने का मूलमंत्र सिखाती है। अहंकार मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। यही मनुष्य को ईश्वर से विमुख कराता है। गुरु जम्भेश्वर जी ने काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से बचने के लिए कहा है। सहजावसी, मध्यम मार्ग का आवलम्बन और सद्वृत्तियों का विकास गुरु जम्भेश्वर के आचार पक्ष की प्रमुख विशेषताएं हैं। इसलिए उन्होंने मानवीय सद्वृत्तियों के लिए सत्संगति को आवश्यक माना है। ईश्वर प्राप्ति को जीवन का लक्ष्य मानते हुए पलायनवादी प्रवृत्तियों को प्रश्रय नहीं दिया है। गृहस्थ जीवन में धर्म-नियमों का पालन करते हुए भी मनुष्य अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है।

श्री गणेश जी का वास्तविक स्वरूप[1]

सुखबीर दत्त मिश्र शास्त्री
२१३-मकइलपुरी, रुड़की २४९४०७

हमारी भारतीय परम्परा में श्रेष्ठ से श्रेष्ठ अथवा किसी भी प्रकार के कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व, यहाँ तक कि जीव के माता के गर्भ में आने के पूर्व से लेकर के मृत्युपर्यन्त अथवा मृत्यु के पश्चात् भी होने वाले सभी कार्यों के प्रारम्भ में प्रातः स्मरणीय श्री गणेश जी का सर्वप्रथम स्मरण एवं पूजन किया जाता है। किन्तु उस पूजन में गणेश जी को एक मिट्टी की डली पर डोरी, कलावा लपेट कर बना लिया जाता है अथवा मिट्टी की बनी हुई मूर्ति को अथवा कागज पर बने गणेश जी के चित्र को रख लिया जाता है। फिर उसी को गणेश जी मानकर उनका पूजन करते हैं। किन्तु क्या यही गणेश जी का वास्तविक स्वरूप है ? यह तो गणेश जी का वास्तविक स्वरूप नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में यह निर्धारण करना परम आवश्यक हो जाता है कि गणेश जी का वास्तविक स्वरूप क्या है। किसी भी प्रकार के कार्य की सफलता के लिये पूजन के प्रारम्भ में श्रोत्रिय विद्वान् निम्नलिखित वैदिक मन्त्र का सस्वर उच्चारण करते हैं:-

गणानां त्वा गणपति हवामहे = गणानां गणपतिं त्वां हवामहे।
प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे = प्रियाणां प्रियपतिं त्वां हवामहे।
निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे = निधीनां निधिपतिं त्वां हवामहे।

अर्थात भिन्न २ गणों के जो गणपति हैं आप उन गणपतियों के गणों के समूह के गणपति हैं।

हम अपने इस शुभकार्य में सर्व प्रथम आपका सम्मान के साथ आवाहन करते हैं। (अर्थात् जिस प्रकार सेना में भिन्न-२ प्रकार के वर्ग, गण अथवा कोर होते हैं किन्तु उन सबका एक मात्र अधिकारी जनरल (**General**) होता है उसी प्रकार गणेश जी सभी के स्वामी हैं।

हे गणेश जी ! इस संसार में हमारे जो सबसे अधिक प्रिय हैं, आप हमारा निरन्तर उपकार करने तथा शत्रुओं से रक्षा करने, हमारे सम्मान एवं समृद्धि की रक्षा करने के कारण उनसे भी अधिक प्रिय हैं। हम अपने इस शुभ कार्य में सर्वप्रथम आपका सम्मान के साथ आवाहन करते हैं।

हे गणेश जी ! इस संसार में जो सबसे बड़े निधि धन के कोष हैं आप उन निधियों के जो स्वामी हैं उन स्वामियों के भी स्वामी हैं अर्थात् शत्रुओं से उनकी रक्षा करने के कारण

१. लेखक के साथ सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। (सम्पादक)

उनके स्वामी हैं। हम अपने इस शुभ कार्य में सर्वप्रथम आपका सम्मान के साथ आवाहन करते हैं।

किन्तु आज के युग में तो गणेश जी के पूजन में इस श्लोक का उच्चारण होता है:-

गजाननं भूतगणादिसेवितम्, कपित्थ जम्बूफलचारुभक्षणम्।
उमासुतं शोकविनाशकारकम्, नमामि विघ्नेश्वरपादपंकजम्।।

इसका अर्थ करते हैं कि गणेश जी का मुख हाथी का मुख है और इस हाथी के मुख के होने की पुष्टि में उनका भोजन कपित्थ = कैंथ (बेल जैसा कठोर फल) और जम्बू = जामुन का फल बतलाते हैं।

गणेश जी के हाथी का मुख होने का इतिहास भी इस प्रकार बतलाते हैं कि एक बार माता पार्वती जी ने स्नान करते समय अपने पुत्र गणेश जी को (यद्यपि गणेश जी पहले से ही माने जाते हैं) द्वार पर इसलिये खड़ा कर दिया कि कोई अन्दर प्रवेश न कर सके। संयोगवश स्वयं उमापति भगवान शंकर उस समय वहां आ गये। गणेश जी द्वारा प्रवेश के लिये मना किये जाने पर भगवान् शंकर ने क्रोधित होकर गणेश जी का शिर काट दिया। जैसे ही माता पार्वती जी स्नान करके स्नानगृह से बाहर आई तो उन्होंने देखा कि उनके पति भगवान् शंकर ने उनके पुत्र गणेश जी का शिर धड़ से अलग कर दिया है। माता पार्वती जी बहुत रोई चिल्लाई और शंकर जी से गणेश जी के उस शिर को फिर से गणेश जी के धड़ पर जोड़ने की प्रार्थना की। माता पार्वती जी के करुण क्रन्दन को सुनकर शंकर जी का क्रोध दूर हुआ और हृदय में करूणा का संचार हुआ और तब एक हाथी के बच्चे का शिर काट कर गणेश जी के धड़ पर जोड़ दिया। इस प्रकार तब से गणेश जी का मुख हाथी का मुख हो गया और उनका पूजन इसी रूप में होने लगा।

अब यहां पर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि शिवजी को यदि गणेशजी के धड़ पर शिर जोड़ना ही था तो गणेश जी के कटे हुए शिर में चेतना एवं शक्ति तथा क्रियाशीलता का संचार करके गणेश जी के शिर को ही जोड़ना चाहिये था। शिवजी तथा शिवजी के गणों को क्रोध आने पर दूसरों का शिर काटने में कोई कठिनाई नहीं होती थी। शिवजी के गणों ने अपने स्वामी शिवजी की पत्नी, माता सती का समुचित सम्मान न करने पर माता सती के पिता महाराज दक्ष प्रजापति का शिर काटकर सबके देखते देखते दक्ष प्रजापति द्वारा किये जा रहे यज्ञ के हवन कुण्ड में डाल दिया जो तुरन्त जलकर राख हो गया। इस प्रकार अचानक यज्ञ में उत्पन्न हुए भयंकर विघ्न को देखकर यज्ञ को निर्विघ्न पूर्ण करने हेतु देवताओं के वैद्य अश्विनी कुमारों ने यज्ञ में बलि दी जाने वाले बकरे का शिर काटकर दक्ष प्रजापति के धड़ पर जोड़ दिया। इस बकरे के शिर वाले दक्ष प्रजापति की आयु केवल यज्ञ सम्पूर्ण होने पर्यन्त ही थी। यज्ञ के सम्पूर्ण हो जाने पर उस बकरे के शिर वाले दक्ष प्रजापति की भी उस हवन कुण्ड में बलि दे दी गई, क्योंकि बकरे के शिर को धारण करके दक्ष

प्रजापति अपने पूर्व के अधिकार पर आसीन नहीं हो सकते थे और न ही उनको ऐसी स्थिति में जीवित रखना उपयोगी था। हाँ यज्ञ की समाप्ति पर्यन्त तो दक्ष प्रजापति को जीवित रखना बहुत आवश्यक था। अस्तु यह बात तो निर्विवाद सत्य है कि उस समय शल्य क्रिया और शल्य चिकित्सा बहुत उन्नत अवस्था में थी। परन्तु अब प्रश्न यह है कि शिवजी ने जो गणेश जी का शिर काटा था वह काटकर किसी हवन कुण्ड में तो नहीं डाला गया था और यदि यह माना जाय कि शिर धड़ से अलग होकर निष्क्रिय हो गया होगा तो यह भी निश्चित है कि जब तक शिवजी हाथी के बच्चे को ढूंढ़ कर उसका शिर काटकर लाये होंगे तब तक निश्चित रूप से गणेश जी के धड़ की शारीरिक क्रिया भी समाप्त हो गई होगी। और फिर गणेश जी बालक हैं उनके धड़ पर हाथी का शिर भले ही वह हाथी के बच्चे का शिर हो कैसे उसको शल्य क्रिया द्वारा जोड़ा होगा और कैसे उसको स्थिर किया होगा और फिर यदि उसको स्थिर करके शल्य क्रिया द्वारा जोड़ भी दिया हो तो वह तो तात्कालिक उपचार मात्र था उसकी आयु इतनी अधिक कैसे हो गई वह तो कोई स्थायी उपाय नहीं था।

अच्छा यहां तक भी मान लिया जाय कि गणेश जी का शिर हाथी और शेषभाग मानव का, मानव के धड़ ने हाथी के शिर को किसी प्रकार धारण भी कर लिया, अब शरीर और मस्तिष्क की क्रिया को समुचित रूप में संचालित करने के लिये उसके लिये उपयुक्त भोजन की भी आवश्यकता होगी। गणेश जी मनुष्य से सम्बन्धित भोजन खायेंगे अथवा हाथी से सम्बन्धित ? मनुष्य से सम्बन्धित भोजन करने पर वह हाथी का शिर न तो अधिक समय तक स्थिर रह सकता है और न ही शरीर की क्रियाओं का संचालन करने में और उन पर नियन्त्रण करने में सहयोग दे सकता है और यदि हाथी का भोजन करायेंगे तो मानव शरीर वाली गणेश जी के शरीर की पाचन क्रिया उस हाथी के भोजन को पचाने में क्या समर्थ हो पायेगी ? परिणामस्वरूप "कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम्" का कथन और उपयोग कैसे सार्थक हो पायेगा ?

भले ही आयुर्वेद शास्त्र की दृष्टि से कपित्थ = कैंथ (बिल के फल के समान एक फल) और जामुन के फल को स्वीकार कर लें किन्तु वर्ष के बारहों महीनों में इनकी पर्याप्त उपलब्धता सम्भव प्रतीत नहीं होती। सम्भवत: गणेश जी को वर्ष के कुछ भाग में कुछ महीनों तक उपवास करना अथवा निराहार रहना पड़ता होगा। गणेश जी के प्रिय भक्त गणेश जी को "मोदकप्रियमुदमंगलदाता" भी कहते हैं किन्तु गणेश जी कितना अधिक मोदक खायेंगे और फिर कपित्थ जम्बू तथा मोदक दो भिन्न २ प्रकृति के भिन्न २ पदार्थ हैं जिनमें से एक के द्वारा हाथी के शरीर का पोषण होता है और दूसरे के द्वारा मानव शरीर का पोषण एवं संरक्षण होता है। अस्तु इस कथन से मानसिक एवं मस्तिष्क की सन्तुष्टि नहीं होती और फिर मस्तिष्क इस विषय में कि "गणेश जी का शिर हाथी का है और शरीर का शेषभाग अर्थात् धड़ मानव का है" सोचने के लिये विवश हो जाता है कि :-

"गणेश जी का वास्तविक स्वरूप क्या है ?"

प्रात: स्मरणीय गणेश जी के सम्बन्ध में कहा जाता है कि गणेश जी तो "मोदकप्रिय मुदमंगलदाता विद्यावारिधिबुद्धिविधाता" अर्थात् गणेश जी विद्या के वारिधि समुद्र हैं और स्वयं विद्वान् एवं बुद्धिमान् होने के साथ साथ अपने सच्चे भक्तों की बुद्धि का निर्माण करने वाले अर्थात् दूसरों की बुद्धि को श्रेष्ठ सन्मार्ग पर अग्रसारित करके उसका कल्याण करने वाले हैं। गणेश जी की बुद्धि के सम्बन्ध में एक कथा इस प्रकार प्रचलित है कि :-

देवासुरमभूत् युद्धं पूर्णमब्दं शतं पुरा, महिषेऽसुराणामधिपे देवानाञ्च पुरन्दरे।।
तत्रासुरै: महावीर्यै: देवसैन्यं पराजितम्, जित्वा च सकलान्देवानिन्द्रोऽभूत् महिषासुर:।।

अर्थात् देवताओं के स्वामी इन्द्र और असुरों राक्षसों के स्वामी महिषासुर के मध्य दोनों में पूरे १०० एक सौ वर्षों तक युद्ध चलता रहा और तब महापराक्रमी असुरों के रण-कौशल और शक्ति के द्वारा महिषासुर ने देवताओं की सेना और देवताओं के स्वामी इन्द्र को युद्ध में पराजित कर दिया और सम्पूर्ण देवताओं को तथा इन्द्र को जीतकर उन्हें स्वर्ग से बाहर निकाल कर महिषासुर स्वयं स्वर्ग का स्वामी इन्द्र बन गया और स्वर्ग पर भी शासन करने लगा।

ऐसी स्थिति में पराजित हुए देवराज इन्द्र ने पुन: अपने स्वर्ग के राज्य और उसके स्वामी इन्द्र के पद को प्राप्त करने के लिये देवताओं की एक सभा बुलाई। जगत्स्रष्टा ब्रह्मा जी ने उस सभा की अध्यक्षता की। उस सभा में ब्रह्मा जी ने देवताओं की एक बुद्धिमापक परीक्षा का आयोजन किया। इस बुद्धिमापक परीक्षा का विषय था "इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की परिक्रमा जो सबसे पहले करके आयेगा उसको इस परीक्षा में सफल समझा जायेगा, तथा उसको देवताओं में अग्रगण्य और सर्वश्रेष्ठ समझा जायेगा। सभी देवता परीक्षा में सफलता प्राप्त करने की इच्छा से अपने २ श्रेष्ठ वाहनों को लेकर शीघ्रातिशीघ्र ब्रह्माण्ड की परिक्रमा में प्रथम स्थान प्राप्त करने की इच्छा से दौड़ पड़े। गणेश जी का स्थूल शरीर, छोटा सा वाहन चूहा, लम्बी यात्रा की प्रतियोगिता। विपरीत परिस्थितियों में भी गणेश जी ने अपने बुद्धि बल से इस प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त किया। कहा भी है कि : "क्रियासिद्धि: सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे।" सम्पूर्ण कथा के सार को संक्षेप में इस प्रकार स्वीकार किया जा सकता है कि गणेश जी बुद्धि के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वमान्य, इसलिये प्रथम पूजनीय हैं।

छान्दोग्योपनिषद् के प्रथम अध्याय के द्वितीय खण्ड में आता है कि "देवसुरा ह वै यत्र संयेतिरे उभये प्राजापत्या:" अर्थात् देवता और असुर दोनों प्रजापति की सन्तान हैं। इसलिये दोनों भाई भाई हैं। किन्तु जहाँ पर राजसत्ता प्राप्त करने तथा स्वार्थपूर्ति का प्रश्न उठता

है वहां प्राचीन काल में मर्यादापुरुषोत्तम श्री राम एवं श्री भरत तथा वर्तमान युग में नेताजी श्री सुभाषचन्द्र बोस जी का चरित्र इसका अपवाद होने के कारण प्रशंसा के योग्य है। अन्यथा विश्व के सभी महान् से महानतम व्यक्ति इसकी परिधि में आ जाते हैं। ऐसी स्थिति में देवता और असुर इस परिधि से ब्राहर कैसे रह सकते हैं ?

राक्षस लोग निश्चित रूप से हठी प्रकृति के थे। वे अपनी हठ को पूरा करने के लिए किसी को क्षमा करना नहीं जानते थे, यहाँ तक कि स्वयं को भी क्षमा नहीं करते थे। यथा हिरण्यकश्यप ने अपनी हठ को पूर्ण करने के लिये अपने पुत्र प्रह्लाद को कितनी यातनाएँ दीं, पर्वत से नीचे गिराया, अपनी बहिन होलिका की गोदी में बैठाकर प्रज्जवलित अग्नि में बैठाया, तप कर लाल हुए लौह स्तम्भ में बांध दिया। अपनी हठ को पूरा करने के लिए अपने सब से अधिक प्रिय, एक मात्र पुत्र को जो इतना भयंकर कष्ट एवं पीड़ा दे सकता है वह और दूसरों को कैसे क्षमा करेगा ?

राक्षसराज रावण ने अपने स्वार्थ **तीनों लोकों का स्वामी बनने के लिये** भगवान् शंकर को प्रसन्न करने हेतु-

प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य यः शिरोऽतिरागाद्दशमं चिकर्तिषुः।
अतर्कयद्विघ्नमिवेष्टसाहसः प्रसादमिच्छासदृशं पिनाकिनः।।
(शि.व., प्रथम सर्ग, श्लोक ४९)

रावण ने तीनों लोकों का स्वामी बनने की इच्छा से भगवान् शंकर को अपने नौ शिरों की बलि तो चढ़ा दी, जैसे ही उसने दशवें शिर को काटना तथा काटकर बलि चढ़ाने की सोची, भगवान् शंकर ने उसके शिर को काटने से पूर्व ही प्रसन्न होकर उसकी इच्छा के अनुरूप वर प्रदान किया। रावण को वर प्राप्त करने की इतनी प्रसन्नता नहीं हुई जितना दशवां शिर काटे जाने से रोके जाने का दुःख।

राक्षस लोक गुरु की बात पर पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास करते थे। यथा छान्दोग्य उपनिषद् के अष्टम अध्याय के सप्तम खण्ड में :- आत्मा है व देवानामभिप्रवव्राज विरोचनोऽसुराणां............ समित्पाणी प्रजापतिसकाशमाजग्मतुः..... तौ ह प्रजापतिरुवाच य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यते एष आत्मा इति ह उवाच......... स ह शान्तहृदय एव विरोचनोऽसुरान् जगाम। अर्थात गुरु प्रजापति के द्वारा बताये गये आत्मा के स्वरूप पर विश्वास करके असुरों का नेता प्रसन्न मन से अपने घर लौट गया। गुरु जी ने जो उपदेश दिया देवराज इन्द्र ने उस पर विश्वास नहीं किया। **अथहइन्द्रोऽप्राप्यैव देवान् एतद्भयं ददर्श**। गुरुजी ने जो उपदेश दिया है वह ठीक है अथवा नहीं उस पर शिष्य को विचार करना उचित नहीं है।

राक्षस लोग सरल प्रकृति के थे यथा समुद्र मन्थन के समय (यदि समुद्र मन्थन की कथा सत्य है तो) देवताओं ने राक्षसों को बहका कर चालाकी से फणों की ओर लगा दिया

और स्वयं शेषनाग की पूँछ पकड़ ली तथा समुद्र से प्राप्त १४ रत्नों में से १. अमृत, २. कौस्तुभमणि, ३. लक्ष्मी, ४. वैजयन्ती माला, ५. शंख, ६. ऐरावत, ७. उच्चैःश्रवा, ८. कामधेनु, ९. धन्वन्तरि, १०. रम्भा तो देवताओं ने ले लिये, ११. भयंकर गरल, १२. चन्द्रमा भगवान शंकर को मिले और राक्षसों के हिस्से में आयी एक मात्र मदिरा।

वैज्ञानिक प्रवृत्ति में भी राक्षस लोग देवताओं से बहुत आगे थे। रावण के पास पुष्पक विमान था, जो आज के युग के अतिस्वन (सुपर सोनिक) विमानों से कहीं बहुत अधिक आगे था। पूर्ण रूप से निःस्वन (ध्वनिरहित) था। सुनसान निर्जन वन में सीता जी को हरने के लिये रावण विमान से ही तो आया था और विमान भी राम की कुटिया के निकट ही उतारा होगा। क्योंकि सीता जी को उठाकर अधिक दूर तक भागना सम्भव नहीं था। विमान को उतारने और सीता जी उसमें बैठाकर फिर आकाश में उड़ाने की ध्वनि राम लक्ष्मण किसी को भी सुनाई नहीं पड़ी। किन्तु जटायु जो विमान निर्माता था अपनी प्रयोगशाला में बैठा हुआ परीक्षण कर रहा था उसे अचानक अपने यन्त्रों पर विमान में ले जायी जाती हुई किसी स्त्री (सीताजी) का करुण क्रन्दन सुनाई पड़ा। जटायु ने तुरन्त दिशासूचक यन्त्र से विमान के जाने की दिशा का ज्ञान प्राप्त करके वह जिस भी स्थिति में था उसी स्थिति में अपना विमान लेकर रावण के विमान का पीछा करने के लिये दौड़ पड़ा था इसलिये वह अपने शस्त्रास्त्र नहीं ले सका था। निश्शस्त्र जटायु का शस्त्रधारी रावण से युद्ध हुआ जिसका परिणाम जटायु घायल होकर रावण से पराजित होकर भूमि पर गिर पड़ा। अनुमान लगाइये कि आज इस विज्ञान के युग में निरन्तर विमानों का अपहरण होता है किन्तु क्या कोई विमान चालक वैज्ञानिक विमान को बचाने अथवा अपने नियन्त्रण में लेने के लिये उनके पीछे दौड़ता है ? राक्षस लोग विमानों में चढ़कर आकाश में स्थित होकर युद्ध भी करते थे। यथा:-

उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः। तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका।।
नियुद्धं खे तदा दैत्य श्‍ चण्डिका च परस्परम्। चक्रतुः प्रथमं सिद्धमुनिविस्मयकारकम्।।
दुर्गासप्तशती अध्याय १० श्लोक २२,२३

अर्थात् वह शुम्भ नाम का राक्षस देवी को उठाकर एक दम से आकाश में ले गया और वहीं आकाश में बिना किसी आधार के उस राक्षस के साथ देवी का भयंकर युद्ध हुआ। आकाश में देवी और राक्षस का इस प्रकार का भयंकर युद्ध देखकर सिद्धों और मुनियों को बहुत आश्चर्य हुआ।

हमारी कल्पना केवल वहीं तक उड़ान भर सकती है जहाँ तक हमारा ज्ञान है। हमारे ज्ञान से अधिक हमारी कल्पना का विस्तार नहीं हो सकता। निर्धारित संख्या महाशंख से अधिक कहने के लिये हम असंख्य शब्द का, सुन्दरता में कोई उपमान न मिलने पर हम सौन्दर्यातीत, वर्णनातीत आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। राक्षसों के उस युद्ध में राक्षसों

द्वारा विकसित विज्ञान का स्वरूप कितनी उन्नत अवस्था में था हमें रक्तबीज नामक एक भयंकर वैज्ञानिक राक्षस (शस्त्र) से पता चलता है कि :-

रक्तविन्दुर्यदाभूमौ पतत्यस्य शरीरतः, समुत्पतति मेदिन्यां तत्प्रमाणस्तदासुरः ।।४१।।
यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः, तावन्तः पुरुषाः जातास्तद्वीर्यबलविक्रमाः ।।४४।।
ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताः सहस्रशः, ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषा रक्तसम्भवाः ।।४५/२, ४६/२

दुर्गासप्तशती अध्याय ८

उवाच (चण्डिका) कालीं चामुण्डे विस्तीर्णं वदनं कुरु। मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम्।। ५३/२ ५७/२
जघान रक्तबीजं तं चामुण्डापीतशोणितम् सः पपात महीपृष्ठे शस्त्र संघसमाहतः ।।६१।।

कितना विचित्र एवं भयंकर राक्षस (वैज्ञानिक बम) जिसके रक्त (बम के टुकड़े) की एक बून्द का पृथ्वी से स्पर्श होने पर तो उसी जैसा भयंकर राक्षस (शक्तिशाली बम) उत्पन्न हो जाता था किन्तु देवी के द्वारा उस राक्षस के सम्पूर्ण रक्त (बम के सम्पूर्ण टूकड़ों को अपने मुख में (निर्धारित यन्त्र में) ले लेने पर वह एक बूंद तो क्या सम्पूर्ण रक्त निष्क्रिय हो गया। आज भी तो इराक और अमेरिका के युद्ध में इराक ने कितने भयंकर बमों का प्रयोग किया। यदि उनमें से एक बम भी पृथ्वी पर गिरता तो भयंकर विनाशकारी स्थिति को उत्पन्न कर देता किन्तु अमेरिका ने अपने (उस बम के विरोधी) बमों से इराक के सम्पूर्ण बमों को आकाश में ही (पृथ्वी पर गिरने से पूर्व ही पृथ्वी का स्पर्श होने देने से पूर्व ही) निष्क्रिय बेकार कर दिया।

राक्षसों ने युद्धों में विजय प्राप्त करने के लिये आज के वैज्ञानिकों की भान्ति भिन्न भिन्न प्रकार की अनेक गैसों का निर्माण एवं आविष्कार कर लिया था जिनका प्रयोग करने पर, गैसों का वायुमण्डल में मिल जाने पर उस वायु मण्डल में देवताओं का राक्षसों के साथ युद्ध करना कठिन ही नहीं असम्भव हो जाता था। युद्ध करने पर न केवल पराजय अपितु भयंकर रोगों का भी ग्रास बनना पड़ता था।

महाकाव्य महाभारत में एक स्थान पर आता है कि जिस समय महाभारत के युद्ध की सम्पूर्ण तैयारी पूर्ण हो गई तब वहाँ पर नागराज कन्या चित्रांगदा से उत्पन्न अर्जुन का पुत्र बब्रुवाहन आया और श्रीकृष्ण जी से कहने लगा कि हे मातुल श्री कृष्ण जी ! आप इतना परिश्रम व्यर्थ में ही कर रहे हैं। यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं कुछ ही क्षणों में इन सभी शत्रुओं को समाप्त कर सकता हूँ। तब कुछ ही क्षणों में इतनी बड़ी सेना को समाप्त करने की बात को सुनकर श्रीकृष्ण आश्चर्यचकित हो गये और उन्होंने बब्रुवाहन से पूछा कि हे बब्रुवाहन ! तुम इतनी बड़ी सेना को क्षण भर में कैसे समाप्त कर सकते हो ? तुम्हारे पास तो शस्त्रास्त्र भी बहुत कम हैं केवल तीन बाण हैं तुम इन सीमित बाणों से इतनी बड़ी सेना को कैसे समाप्त करोगे ? इस पर बब्रुवाहन ने कहा कि हे मामा जी ! इन तीन बाणों में

भी दोबाण अधिक हैं केवल एक बाण पर्याप्त है। श्रीकृष्ण जी ने परीक्षण के तौर पर जानना चाहा तब बभ्रुवाहन ने अपने एक बाण की नोक पर पहले एक तरल पदार्थ को लगाया और फिर उस पर एक चूर्ण को लगाया और शत्रु कौरवों की सेना को लक्ष्य करके छोड़ दिया और बाण छूटने के क्षण भर बाद ही सम्पूर्ण कौरव सेना निश्चल जड़वत् मूकवत् पूर्ण रूप से निस्तब्ध हो गई। कृष्ण इस दृश्य को देखकर आश्चर्यचकित हो गये। तब बभ्रुवाहन ने कहा कि हे मामा जी ! मेरे इस बाण पर ऐसा पदार्थ था जो वायु का स्पर्श होते ही वायुमण्डल में घुल जाता है और शत्रु को निश्चित रूप में उसी वायुमण्डल में श्वास लेना पड़ता है जिसके फलस्वरूप वह तुरन्त अचेतन होकर कुछ ही क्षणों में निष्क्रिय हो जायेगा। अब इस दूसरे बाण का प्रयोग करने पर वह मर जायेगा केवल शव मात्र ही शेष रह जायेगा। श्रीकृष्ण ने इसके प्रभाव से बचने का उपाय पूछा तो बभ्रुवाहन ने कृष्ण को उस उपकरण को भी दिखाया जिसको मुख नाक आदि पर धारण करने पर वायुमण्डल की वायु का श्वास एवं शारीरिक क्रिया पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। श्रीकृष्ण समझ गये कि यदि बभ्रुवाहन ने इस भयंकर रसायनिक प्रक्रिया का प्रयोग किया तो न केवल शत्रु पक्ष कौरवों का ही विनाश होगा अपितु पाण्डव पक्ष के वे लोग भी इससे प्रभावित एवं विनाश को प्राप्त हो जायेंगे जिनको हम नष्ट करना नहीं चाहते। श्रीकृष्ण तुरन्त बभ्रुवाहन से बोले कि मैं इस युद्ध की विजय का श्रेय तुम्हारे पिता अर्जुन को देना चाहता हूँ। इस पर बभ्रुवाहन क्रोधित होकर बोला कि इस युद्ध की विजय का श्रेय मैं लूंगा और जैसे ही उस क्रोध की अवस्था में बभ्रुवाहन ने अपना बाण चढ़ा कर चलाना चाहा श्रीकृष्ण ने तुरन्त बभ्रुवाहन का शिर काट दिया और सम्भावित अपनी पाण्डवों की सेना के विनाश को होने से बचा लिया।

· उस बभ्रुवाहन के पास एक भयंकर प्रकार की गैस थी, उसके पास उस भयंकर प्रकार की गैस के प्रभाव से बचने का उपकरण भी था। कौरवों के पास तो क्या, पाण्डवों के पास भी उस प्रकार की भयंकर गैस नहीं थी। गैस के प्रभाव से बचने के उपकरणों के होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

महर्षि कपिल भी इसी प्रकार की रसायन एवं रासायनिक प्रक्रिया वाली गैस का आविष्कार कर रहे थे। यह निश्चित था कि वे इस रसायन का आविष्कार किसी पराक्रमी राक्षसराज के लिए कर रहे होंगे जिसका प्रयोग वे देवताओं पर विजय प्राप्त करने के लिए करते। इन्द्र इसको जानकर बहुत भयभीत था किन्तु महर्षि कपिल के विरुद्ध कुछ कर पाने में असमर्थ था। संयोगवश महाराजा सगर ने उस समय अश्वमेध यज्ञ हेतु अपनी ६०,००० साठ हजार सेना के संरक्षण में अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा छोड़ दिया जिसके सफल होने पर इन्द्र का पद निश्चित रूप से देवराज इन्द्र को छोड़ना पड़ा। देवराज इन्द्र इस समय ऐसी दो भयंकर परिस्थितियों के बीच फंस गया जिनमें से वह एक का भी मुकाबिला नहीं कर सकता था लेकिन तभी उसे एक अच्छा उपाय सूझा उसने अवसर पाकर किसी प्रकार उस

अश्वमेध के घोड़े को चुराकर महर्षि कपिल के आश्रम में बांध दिया। तब महाराजा सगर की सेना अनेक दिनों तक इधर उधर भटकने के तथा अनेकों प्रयत्नों को करने के बाद बड़ी कठिनाई से महर्षि कपिल के आश्रम में उस घोड़े को खोज पाने में समर्थ हो पायी। एक तो अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा कठोर संरक्षण में गायब दूसरे महाराजा सगर की भयंकर भर्त्सना एवं ताड़ना, और फिर अनेकों दिनों तक परिश्रम करना खोज के लिये भटकना, इन सब कारणों से क्रोधित हुई महाराजा सगर की सेना महर्षि कपिल के आश्रम में उस घोड़े को बन्धा हुआ पाकर महर्षि कपिल को मारने के लिये दौड़ी। परिस्थिति से अनभिज्ञ एवं निर्दोष महर्षि कपिल अचानक मारने के लिये अपनी ओर आती हुई उस विशाल सेना को देखकर अपनी सुरक्षा के अभाव में विचलित होकर अपने द्वारा आविष्कृत उस भयंकर रसायन का प्रयोग करने के लिये विवश हो गये। जैसे ही उन्होंने भयंकर रसायन और रसायनिक प्रक्रिया गैस का प्रयोग किया तुरन्त ही राजा सगर की वह ६०,००० साठ हजार सैनिकों की विशाल सेना उस गैस के प्रयोग के क्षण भर बाद ही निश्चेतन एवं प्राणहीन होकर धराशायी हो गई। ६०,००० साठ हजार मनुष्यों का दाह-संस्कार करना एक कठिन कार्य था जिसके लिये एक भयंकर किन्तु निश्चित मार्ग पर चल कर उन शवों को समुद्र तक ले जाने वाले जल के प्रवाह की आवश्यकता थी जिससे शेष मानव जाति पर उन शवों से उत्पन्न होने वाले रोगों का प्रभाव न पड़े इसी लिये महाराजा भगीरथ कठोर परिश्रम करके विशाल पर्वतों के मध्य मार्ग का निर्माण करके गंगा जी को इस धरातल पर लेकर आये और उसके भयंकर प्रवाह से उन साठ हजार शवों को समुद्र में पहुँचाने में समर्थ हुए।

महाकवि कालिदास द्वारा विरचित रघुवंश महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में आता है कि महर्षि वशिष्ठ जी की गाय नन्दिनी ने अपने सेवक महाराजा दिलीप की परीक्षा लेने के उद्देश्य से एक कृत्रिम सिंह के द्वारा अपने ऊपर आक्रमण करा दिया और जैसे ही दिलीप ने उस सिंह को मारने के लिये अपने तूणीर से बाण को निकालने के लिये दायें हाथ को बढ़ाया तो-

वामेतरस्तस्य करः प्रहर्तुर्नखप्रभाभूषितकंक पत्रे ।
सक्तांगुलिः सायकपुंखरग्व चित्रार्पितारम्भ इवावतस्थे ।।
बाहुप्रतिष्टम्भ विवृद्धमन्युरभ्यर्णमागस्कृतमस्पृशद्भिः ।
राजा स्व तेजोभिरदह्यतान्तर्भो गीव मन्त्रौषधी रुद्धवीर्यः ।।

रघुवंश महाकाव्य, द्वितीय सर्ग, श्लोक ३१, ३२

एक शक्तिशाली समर्थ शासक साधनों के होते हुए भी शत्रु के सम्मुख होने पर जड़वत् होकर के कुछ भी कर पाने में असमर्थ हो जाये तो उसकी मानसिक स्थिति क्या होगी स्वयं यह अनुमान लगाया जा सकता है।

इसी सम्बन्ध में एक और विवरण भी प्राप्त होता है। भगवान् शंकर भक्तों के रक्षक हैं। उन्हें इससे कोई प्रयोजन नहीं है कि वह देवता है अथवा राक्षस'। देवराज इन्द्र इससे

शंकर जी से बहुत अप्रसन्न हुए और शिवजी को समाप्त करने हेतु उन पर वज्र का प्रहार करने का प्रयत्न किया तभी शंकर जी अचानक प्रहार करने के लिये तैयार हुए इन्द्र की ओर देखा तो-

प्रत्यब्रवीच्चैनमिषुप्रयोगे तत्पूर्वभंगे वितथरप्रयत्नः।
जडीकृतस्त्रयम्बकवीक्षणेन वज्रं मुमुक्षन्निव वज्रपाणिः।।

रघुवंशमहाकाव्य सर्ग २, श्लोक ४२

वज्रपाणिः = इन्द्र, वज्रं = वज्र को मुमुक्षन्निव = प्रहार करने की इच्छा से फेंकना चाहता हुआ सा त्र्यम्बकवीक्षणेन भगवान् शंकर के देखने मात्र से, जड़ीकृत = जड़ कर दिया गया।

इस प्रकार सूर्यवंशी राम के पूर्वज महाराजा सगर के समय में महर्षि कपिल के द्वारा महाराजा सगर के ६०,००० साठ हजार सैनिकों को बिना शस्त्र के प्रहार के केवल रसायनिक प्रक्रिया (गैस) के माध्यम से इसके पश्चात् महाराजा दिलीप को महर्षि वशिष्ठ ने नन्दिनी तथा कृत्रिम सिंह के माध्यम से रसायनिक प्रक्रिया (गैस) के माध्यम से, भगवान् शंकर के ऊपर वज्र से प्रहार करने वाले इन्द्र को भगवान् शंकर ने केवल देखने (दृष्टि के माध्यम से रसायनिक प्रक्रिया गैस के माध्यम से) मात्र से जड़ निष्क्रिय बना दिया था।

इस प्रकार की रसायनिक क्रियाओं (गैस आदि के प्रयोगों) का प्रचलन रामायण काल में राम और रावण के युद्ध के समय में भी था। हम उसको या तो आसुरी अथवा मायावी शक्ति अथवा राम (ईश्वर) के वशवर्ती शक्ति का नाम देते हैं। यथा जब हनुमान जी सीता जी की खोज में लंकापुरी में जाते हैं तब हनुमान जी का रावण पुत्र मेघनाद से युद्ध होता है। श्री हनुमान् जी तथा मेघनाद "भिरे युगल मानहु गजराजा" तब हनुमान जी ने अपनी पूरी शक्ति से "मुष्टिक मारि चढेऊ तरु जाई, ताहि एक क्षण (मेघनादको) मूर्च्छा आई।" तब मेघनाद ने "उठि बहोरि कीन्हेसि बहुमाया, जीति न जाय प्रभंजन जाया"। तब मेघनाद ने विवश एवं हताश होकर "ब्रह्मबाण तेहि कपि कहँ मारा, परतिहु बार कटक संहारा। तेहि जाना कपि मूर्च्छित भयऊ नागफांस बांधेसि लेइ गयऊ।" यह ब्रह्मबाण क्या था ? अतिशक्तिशाली होते हुए भी मेघनाद ने जब अपने से भी अत्यधिक शक्तिशाली हनुमान जी को जीत पाने में अपने को असमर्थ पाया तब उसने हनुमान् जी को अचेत मूर्च्छित करने वाले अमोघ अस्त्र उस ब्रह्मबाण को जिसे दूसरे शब्दों में अचेत करने वाली रसायनिक क्रिया (गैस) का प्रयोग कहा जा सकता है का प्रयोग किया। अर्थात् जिस महाशक्तिशाली हनुमान् जी को शारीरिक शक्ति से अपने वश में नहीं किया जा सका, भयंकर शस्त्रों के प्रयोग से हराया नहीं जा सका, उस शक्तिशाली हनुमान् जी को गैस का प्रयोग करके, श्वास के माध्यम से शरीर में प्रवेश कराकर अचेत, मूर्च्छित कर दिया।

(रामचरितमानस-सुन्दर काण्ड, पृष्ठ ८२७, दोहा १७, चौपाई ७, ८, दोहा १८, चौपाई १,२)

इसी प्रकार लक्ष्मण और मेघनाद के युद्ध में लक्ष्मण जी से पराजित हुआ मेघनाद जब नानायुद्ध प्रहार कर शेषा राक्षस भयऊ प्राण अवशेषा। रावणसुत निजमन अनुमाना संकट भयऊ हरहि ममप्राणा।

वीरघातिनी छांडिसि सांगी तेज पुंज लक्ष्मण उर लागी।
मूर्छा भई शक्ति के लागे तब चलि गयऊ निकट भय त्यागे।।

अर्थात् लक्ष्मण जी से युद्ध करते समय जब मेघनाद अपने को असहाय अनुभव करने लगा तो उसने अपने प्राणों की रक्षा के लिये तथा लक्ष्मण जी को मारने के लिये लक्ष्मण जी पर वीरघातिनी सांगी नाम की शक्ति को जो बहुत अधिक तेज का पुंज थी को छोड़ा, जिसके लगते ही भयंकर प्रहार से लक्ष्मण जी एक दम से तुरन्त अचेत हो गये। उस भयंकर रसायनिक प्रक्रिया गैस का प्रभाव था कि उस शरीर पर जिस शरीर पर शक्ति लगी है प्रात: काल के निकलते हुए सूर्य की किरणें स्पर्श हो जाये तो गैस अपना पूर्ण प्रभाव दिखलायेगी और वह अचेतन और निष्क्रिय शरीर प्राणारहित हो जायेगा।

(रामचरितमानस-लंका काण्ड पृष्ठ ९२८, दोहा ७८, चौपाई ५,६,७,८)

इसी प्रकार जब रावण का पुत्र नरान्तक अपने साथी राक्षसों को साथ लेकर राम की सेना से युद्ध करने के लिये आता है और जब राम की सेना से पार पाने में असमर्थ हो जाता है तो तब वह मूर्च्छित, अचेत, बेहोश तथा निष्क्रिय बनाने वाली रसायनिक प्रक्रिया अर्थात् गैस आदि का प्रयोग करता है यथा:-

शर अस्तंभन विपुल पंवारे भये अचल कपि टरहिं न टारे।।
ले ले पाश निशाचर धाई बांधत जिमि चुंगलि शुक पाई।।
जे कपि लखैं विपुलबल बंका, ते मूर्छित फैंके गढ लंका।।
अंगद हनुमान् जब जागे नरान्तकसन जूझन लागे।।
क्षण इक कीश न पायऊ लरई, पुनि शर हति मूर्च्छावश भयऊ।।

उस युद्ध में नरान्तक ने राम की सेना को स्तम्भित (जड़, निष्क्रिय एवं अचेतन) करने वाले (गैस के) शस्त्रों का प्रयोग किया जिनका प्रयोग करने पर राम की सेना पूर्ण रूप से निष्क्रिय जड़ एवं स्तम्भित हो गई। तब राक्षसों ने राम की सेना के सैनिकों को पाश जाल में बांध लिया और उनमें भी जिन जिन सैनिकों को नरान्तक ने अधिक शक्तिशाली एवं हानिकारक योद्धा समझा उन सबको उसी मूर्छित अचेत अवस्था में लंका में भेज दिया और किसी योद्धा का तो कहना ही क्या अंगद और हनुमान जी की भी यही स्थिति हो गई। फिर भी अंगद और हनुमान जी और दूसरे योद्धाओं की अपेक्षा

शीघ्रतापूर्वक सचेत और सावधान होकर फिर नरान्तक से जैसे ही युद्ध करने के लिये तैयार हुए वे एक क्षण भी नरान्तक से युद्ध नहीं कर पाये थे कि नरान्तक ने पुन: और अधिक शक्तिशाली गैस का प्रयोग किया जिसके प्रभाव से अंगद और हनुमान् जी फिर से अचेत जड़ एवं निष्क्रिय हो गये।

याम युगल तेहिकर वरदाना। अर्थात् इस बार प्रयोग की हुई गैस दोपहर अर्थात् कम से कम ६ घंटे (पूरा दिन ८ पहर-२४ घंटे, २ पहर-६ घंटे) का था। पूरी सेना ६ घंटे मूर्छित अचेत रही।

सो युग याम गये जब बीती तब रघुबीर सजी जप रीती।।
हांक देई कपि भालु जगाये भये विगतमूर्छा सब धायें।।
हनुमान अंगद जब जागे राम लखण चरणन अनुरागे।।

दोपहर तक मूर्छित अचेत रहने पर राम की सेना सचेत हो पाई किन्तु तब भी श्री राम ने उन सबको हांक अर्थात् अवाज देकर सावधान किया। सचेत और सावधान होने पर उन्हें पता चला कि हम तो युद्ध के मैदान में हैं इसलिये फिर से युद्ध के लिये तैयार होकर चल पड़े। हनुमान जी और अंगद जी की भी यही स्थिति थी।
(रामचरित मानस-लंका काण्ड पृष्ठ १०२८, १०२९ दोहा २०२, चौपाई ४,५,७ दोहा २०३ चौ० १,२,३,५,६,७)

होते होते रावण युद्ध के मैदान में आ गया और उसने राम की सेना को विचलित करने के लिये रसायनिक क्रिया अर्थात् गैस आदि का प्रयोग किया। उस रसायनिक क्रिया का अर्थात् गैस का प्रयोग होते ही -

जहँ जाहि मर्कट भागि, तहँ बरत देखहिं आगि। भये विकल वानर भालु, पुनि लागु बर्षइ बालु। जहँ तहँ थकित करि कीश, गर्जेऊ बहुरि दशशीश। **लक्ष्मण कपीश समेत, भये सकल वीर अचेत। हा राम हा रघुनाथ, कहि सुभट मीजहिं** हाथ। इहि विधि सकल बल तोरी, तेहि कीन्ह कपट बहोरि।।

राम की सेना के वानर इधर उधर जहाँ पर भी भागते हैं वहीं पर आग को जलती हुई देखते हैं, चारों ओर बालु अर्थात् रेत की वर्षा होने लगती है। परिणाम स्वरूप वानर परेशान और व्याकुल हो जाते हैं। तब रावण प्रसन्न होकर गर्जना करता है उधर लक्ष्मण और हनुमान जी के साथ सुग्रीव आदि सभी वीर उस रसायनिक क्रिया गैस के प्रभाव से अचेत बेहोश मूर्छित हो जाते हैं। सभी योद्धा हा राम, हा रघुनाथ कहकर के हाथों को मलने लगते हैं। इस प्रकार रावण ने राम की सम्पूर्ण सेना के बल को तथा मनोबल को भंग कर दिया।
(रामचरित मानस लंकाकाण्ड पृष्ठ १०८०, दोहा २६१, छन्द ४,५,६)

इसी प्रकार श्री राम लंका की विजय के उपरान्त जब अयोध्या में आकर अश्वमेध यज्ञ करने के लिये अश्व को भली प्रकार से पूज करके, अलंकारों से सुसज्जित करके सेना से सुरक्षित करके घूमने के लिये छोड़ते हैं तो उसके साथ -
षष्टि सहस दश वीर वर रामानुज रणधीर, मध्य ताहि (अश्व को) आनेऊ तहाँ जहाँ राम रघुवीर।।३३।।

पूजेऊ प्रभुलय जग जय हेतू लिखेऊ पत्र सोई करि अभिषेका। १.२.
जेहि बल होय गहे सो बाजी, देहु दण्ड (कर) वन जाहु की भाजी।
तब वन में लक्ष्मण जी और लव कुश का युद्ध प्रारम्भ हो गया और तब :-
शक्रजीत अरि जे शरमारे ते सब बाल काटि महि डारे। ४९/८
कुश करि क्रोध विशिख सो लीन्हा मन्त्र प्रेरि मुनिवर (बाल्मीकि) जो दीन्हा।५०/१
नाक रनसातल भूतलमाहिं यह शर छुटै बचै कोऊ नाहीं।।२।।
मोहन बाण नाम तेहि जानो विष्णु विरंचि शम्भु जेहि मानो।।३।।
मारेऊ ताकि शेष डर माहीं परे धरणि तल सुधि कछु नाहीं।।४।।

श्रीराम तब भरत जी से कहते हैं कि-
रहौ यज्ञ रिपु देखहिं जाई, बालक रावण के दुखदाई।। ५१/२
तब भरत जी के युद्ध भूमि में आने पर-
कुश ने खैंचि धनुष गुण छाडेऊ सायक, कपिपति आदि हने कपि नायक।।५५/४।

मूर्छित सेनपरी महिमाहीं बचेऊ न कपि घायल जो नाहीं।।५।।
दुःखित देख कुश बहुत रिसाना चाप चढाय नाणा सन्धाना।।८।।

समरभूमि सोये भरत लवहि लीन्ह डर लाई, सुमिरि मातु गुरु चरण रहे समर जप पाई।।५६।।

श्रीराम ने ६०००० साठ हजार वीर सैनिकों, १० दश सेनापतियों एवं अपने छोटे भाइयों के साथ अश्वमेध यज्ञ के अश्व को भली भांति पूज करके एक पत्र लिखकर उसके गले में बांध दिया। उस पत्र में लिखा था कि यदि कोई अपने को शक्तिशाली समझता है तो इस अश्व को पकड़ ले। नहीं हमें कर प्रदान करे अन्यथा वह अपने देश को छोड़कर वन को भाग जाये। इसके पश्चात् लक्ष्मण और लवकुश में युद्ध प्रारम्भ हो गया। तब लक्ष्मण जी ने जितने भी बाण मारे लव और कुश ने उन सबको काट डाला। तब कुश ने क्रोधित होकर महर्षि बाल्मीकि जी के द्वारा मन्त्रों से प्रेरित मोहनबाण नामक बाण को जिसका ब्रह्मा विष्णु और महेश भी सम्मान करते हैं और जिसको चलाने पर पृथ्वी आकाश और पाताल में कोई उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता, उस बाण को लक्ष्मण जी की छाती में मारा जिसके लगते ही लक्ष्मण जी पृथ्वी

पर गिर पड़े और उन्हें कुछ भी होश नहीं रहा। युद्ध के इस समाचार को सुनकर श्रीराम भरत जी से कहते हैं कि हे भरत! यह अश्वमेध यज्ञ भले ही रुक जाये तुम उन शत्रुओं को जाकर देखे। हो न हो यह निश्चित है कि वे रावण के दु:खदायी बालक हैं। तब भरत जी युद्धभूमि में सुग्रीव आदि श्रेष्ठ वानरराज एवं अन्य वीर वानरों के साथ आते हैं तब कुश ने धनुष चढ़ा कर बाण छोड़े जिन्होंने सभी सुग्रीव आदि श्रेष्ठ वानरों को मूर्छित कर दिया और फिर कुश ने क्रोध करके भरत जी पर बाण का प्रहार किये जिससे भरत मूर्छित हो गये।
(रामचरितमानस रामाश्वमेघ लवकुशकाण्ड-पृष्ठ १२७१ दोहा ३३, १.२., पृष्ठ १२७२, ३३/४, पृष्ठ १२८६ ४९/८, पृष्ठ १२८६, ५०/१. २. ३. ४., पृष्ठ १२८७.५१/२, पृष्ठ १२९१, ५५/४,५,८, दोहा ५६)

श्रीराम को गुप्तचरों एवं सन्देशवाहकों से जैसे ही यह सब समाचार ज्ञात होता है तो वे बहुत दु:खी होते हैं।

चर वन वचन सुनत दु:खपावा त्यागेऊ मख निज कटक बनावा।।५६/६
चले सकोय कृपालू उदारा आये प्रभु जहँ कटक संहारा।७

तब श्री राम युद्ध भूमि में लव और कुश से कहते हैं कि :-

आवत सुभट समूह हमारे लरिहहिं तुम सनसमर सुखारे।५७/७
अस कहि अंगद नील उठावा जाम्बवन्त कपिपतिहि बुलावा।८
तब हरण शूलहि पाप नाशन कह्यो हँसि रघुनन्दनम्।।छन्द ३७/२
भरतादि रिपुहन सहित लक्ष्मण परे खलमद गंजनम्।

पुन: जब लवकुश हनुमान जी आदि श्रेष्ठ योद्धाओं को सीताजी के पास लाते हैं तो सीता जी कहती हैं

हनुमन्त भालुहि छोरि वेगहि त्यागि बहु समुझायऊ।
रिपुदमन लक्षिमण सहित भरतहि राम समर सुवायऊ।।
सुत कीन्ह कर्मकलंक कुलमंह मोहि विधि विधवा करी।
तजि सोचचन्दन अगर आनहु जाऊँ पियसंग अब जरी।।
मुनिधीर जानकि देई लवकुश संग लै सादर चले।
रण देखि बालक चरित देखत विहँसि मन प्रभु दिन भले।।
रथ देखि हय पहिचानी प्रभु कहँ जाय मुनि आगे भये।
उठि बैठो कौशल नाथ आरत तनय तब आगे छ्ये।। छन्द ४१

सुनि मुनिवर बैन जागे रघुपति भयहरण।
विहंसि उघारे नैन, लीन्हें हृदय लगाय मुनि।। सोरठा ५

श्रीराम को जैसे ही गुप्तचरों से युद्ध का दुःखद समाचार ज्ञात हुआ उन्होंने यज्ञ को बीच में ही छोड़ दिया और सेना लेकर युद्धस्थल में आ गये और लव कुश को देखकर उनसे कहने लगे कि हमारी सेना तुम्हारे साथ लड़ेगी और तब अंगद नील जाम्बवन्त और हनुमान् जी आदि से कहने लगे कि देखो इस युद्ध में, दुष्टों का मद एवं घमण्ड नष्ट करने वाले भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण आदि सभी मूर्छित पड़े हुए हैं। और जब लव और कुश हनुमान् और विभीषण आदि को बांध कर सीताजी के सम्मुख लाते हैं तो सीताजी ने हनुमान् आदि उन सभी योद्धाओं को छुड़वा दिया और दुःखी होकर लवकुश से कहने लगी कि तुमने युद्धभूमि में शत्रुघ्न, लक्ष्मण, भरत और श्रीराम को सुलाकर (मारकर) एक ओर तो कुल का कलंक लगाया है और दूसरी ओर मुझको विध ावा कर दिया है। अब तुम मेरे लिये अगर और चन्दन की लकड़ी की व्यवस्था करो जिससे मैं श्रीराम के साथ चिता पर बैठकर जल जाऊँ। सीताजी के इस करूण-क्रन्दन को सुनकर बाल्मीकि जी ने उनको धैर्य धारण कराया और तुरन्त लव और कुश को साथ में लेकर के युद्ध भूमि में आये और राम के रथ और घोड़ों को पहिचान कर श्री राम से कहने लगे कि हे राम ! उठो आपके सम्मुख आपके पुत्र विनीत भाव में खड़े हुए हैं। मुनि बाल्मीकि जी की इस मधुर वाणी को सुनकर श्रीराम ने अपने नेत्रों को खोला तब बाल्मीकि जी ने श्रीराम को अपने हृदय से लगा लिया।
(रामचरितमानस-रामाश्वमेध लवकुश काण्ड पृष्ठ १२९२, दोहा ५६/६, ७ पृष्ठ १२९३ दो, ५७, ७,८ ३७/२ छन्द पृष्ठ १२९६ छन्द ४०, छन्द ४१ सोरठा ५ ।

यद्यपि रामचरितमानस में लवकुश के साथ राम के युद्ध का विवरण नहीं दिया गया है फिर भी प्राप्त तथ्यों से सिद्ध होता है कि लव कुश के साथ राम का युद्ध अवश्य हुआ होगा और उस युद्ध में लव कुश ने भरत शत्रुघ्न और लक्ष्मण की भान्ति राम को भी अचेत कर दिया था। शास्त्र का नियम है।

यत्स्यादनुचितं वस्तु नायकस्य रसस्य वा।
विरुद्धं तत्परित्याज्यं अन्यथा वा प्रकल्पयेत्।।
(सा०द०, परिच्छेद ६, श्लो० ५०)

अनुचितमितिवृत्तं यथा रामस्य च्छद्मना बालिवधः। तच्चोदात्त राघवे नोक्तमेव। वीरचरिते तु बाली रामवधार्थमागतो रामेण हतः इत्यन्यथाकृतः। महाभारते च युधिष्ठिरस्य "अश्वत्थामा हतः" इति पदस्य असत्यवादितादोषपरिहरणार्थमं "अश्वत्थामाहतः" इति पदेन सह "नरो वा कुंजरो वा" अधिक पदस्य संयोजनम्।

श्रीराम के युद्ध में अचेत होने के कारण ही सीता जी लवकुश से अपने विधवा होने तथा प्रिय स्वामी राम के साथ सती होने के लिये चन्दन और अगर आदि लाने के लिये

कहती हैं। अस्तु-

प्राचीन काल में जहां 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः मुनयो मन्तारः' वेद शास्त्रार्थतत्व अवगन्तारः थे आध्यात्मिक क्षेत्र में आत्मा तथा परमात्मा के प्रत्यक्षीकरण का कार्य करके स्वयं तथा अन्य प्राणियों को मोक्ष मार्ग की ओर प्रेरित करते थे वहाँ भौतिक उन्नति के लिये आवश्यक रसायनिक प्रक्रिया के उपकरणों का प्रत्यक्षीकरण अर्थात् आविष्कार करना भी उनका प्रमुख कार्य था। तभी तो उनके लिये कहा गया है :-

शमाप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः। (अभिज्ञानशाकुन्तलम्)
उदाहरणस्वरूपः

१- महर्षि कपिल ने क्षण भर में ही रसायनिक प्रक्रिया के प्रयोग से राजा सगर के ६०००० साठ हजार सैनिकों को जड़ निष्क्रिय एवं निष्प्राण कर दिया।
२. भगवान शंकर ने वज्रधारी इन्द्र को जड़वत् कर दिया।
३. महर्षि वशिष्ठ (के कृत्रिम सिंह) ने महाराजा दिलीप को जड़ स्थिर कर दिया।
४. महर्षि बाल्मीकि जी की रसायनिक प्रक्रिया (गैस) के आविष्कार के फलस्वरूप लव कुश ने मोहन बाण से राम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न तथा हनुमान् आदि को जड़ निष्क्रिय कर दिया।
५. शंकर भगवान् ने इसी रसायनिक प्रक्रिया के द्वारा असुरों के तीन नगरों का त्रिपुरदाह किया असुर और राक्षस वर्ग भी इस रसायन प्रक्रिया के प्रयोग से भलीभान्ति परिचित था। तथा आवश्यकता पड़ने पर अथवा शक्तिशाली शत्रु से युद्ध करते समय इसका प्रयोग करते थे यथा-
   १- सीताजी की खोज में लंका में गये हुए हनुमान् जी पर मेघनाद ने इस रसायनिक प्रक्रिया का प्रयोग किया जिससे हनुमान् जी अचेत हो गये और अचेत अवस्था में रावण के सम्मुख लाये गये। यह वास्तविकता है चाहे इसे कोई किसी भी रूप में स्वीकार करे।
   २- मेघनाद ने इसी रसायनिक प्रक्रिया का प्रयोग करके लक्ष्मण जी को मूर्छित कर दिया।
   ३- रावण के पुत्र नरान्तक ने शर अस्तम्भन से हनुमान् तथा अंगद को अचेत कर दिया।

निःस्पृह होते हुए भी शास्त्रास्त्रों के प्रधान आचार्य तथा आविष्कारक किसी से द्वेष न रखते हुए भी संसार को नियमित एवं व्यवस्थित बनाये रखने हेतु पिनाक नाम के विशाल धनुष को धारण करने वाले शंकर को देवता तथा असुर दोनों ही अपनी सेवा से सन्तुष्ट करके उनसे इन शस्त्रास्त्रों को प्राप्त करते थे। फिर भी न मालूम इन्द्र ने उन

पर वज्र का प्रहार करना चाहा ? शंकर के विरुद्ध भस्मासुर का अभियान तो सर्वविदित है ही।

उपर्युक्त परिस्थितियों में देवताओं के नायक गणेश जी द्वारा यह आवश्यक समझा जाना अनिवार्य ही है कि वे इन रसायनिक प्रक्रिया के प्रयोगों के प्रभाव से प्रभावित न होने तथा अप्रभावित बने रहने के लिये ऐसे उपकरणों का आविष्कार करें जिनको ध ारण करके वे राक्षसों के साथ निर्बाध रूप से युद्ध करने में समर्थ हो सकें अथवा यह भी सम्भव है कि भगवान् शंकर ने देवताओं की (सेना की) सुरक्षा के लिये इस प्रकार के उपकरणों का आविष्कार करके स्वयं उनके नेता गणेश जी के शिर पर उसको धारण कराया हो और आदि काल से चले आने वाले गणेश जी तभी से शिवजी के पुत्र (शिव द्वारा संरक्षित) माने जाने लगे हों।

इतना तो निश्चित है कि गणेश जी का शिर हाथी का शिर नहीं है। यह एक शक्तिशाली रसायनिक प्रक्रियाओं के प्रभाव को रोकने का एक शक्तिशाली उपकरण है और जिस उपकरण को धारण करके वे वीर वेश में युद्धभूमि में जाते थे, भारत वीरों को वीर वेश में पूजने वाला देश है, भारतीय गणेश जी को उसी रूप में पूजते चले आते हैं।

आज के युग में कुछ विद्वान् न तो गणेशजी को और न ही गणेश जी के उस वीरस्वरूप को स्वीकार करते हैं किन्तु जब हम धार्मिक दृष्टि से भिन्न सामान्य दृष्टि से गणेश जी के स्वरूप पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि आज के युग में भी प्राचीनयुग वाले शस्त्रास्त्रों का आविष्कार उनका प्रयोग रसायनिक प्रक्रिया गैस आदि का आविष्कार तथा उनसे बचने के उपकरणों का आविष्कार किया जाता है और किया जा रहा है।

आज के युग में युद्ध भूमि में किये जाने वाले रसायनिक प्रयोग गैस आदि के प्रभाव से बचने के लिये जिन उपकरणों का प्रयोग किया जाता है उनका स्वरूप गणेश जी के हाथी के मुख वाले उपकरण के समान ही है। तनिक सा अन्तर भी हो सकता है किन्तु वह अन्तर तो केवल इसलिये है जिस प्रकार आज के युग में एक ही उपकरण भिन्न-२ फैक्ट्रियों में बने हुए होने के कारण स्वरूप में कुछ भिन्नता लिये हुए होता है। यथा टाटा कम्पनी में बने हुए बसों के ट्रकों के इञ्जिनों के स्वरूप में तथा अशोका लीलैण्ड की कम्पनी में बने हुए बसों और ट्रकों के इञ्जिनों के स्वरूपों में विद्यमान हैं।

अत: गणेश जी का यह स्वरूप उनके वीर वेश का है। वे सामान्य स्थिति में बुद्धि प्रदान करने वाले हैं, युद्ध की स्थिति भयंकर से भयंकर परिस्थिति में भी श्री शत्रु का सामना करके उसका विनाश करने वाले हैं। प्रत्येक स्थिति में प्रसन्न रहने वाले हैं। उन गणेश जी को हमारा नमस्कार होवे। ॐ श्री गणेशाय नम:।

।। श्री गणेशाय नमः ।।

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे।
गणानां गणतिं त्वां हवामहे।

प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे।
प्रियाणां प्रियपतिं त्वां हवामहे।

निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे।
निधीनां निधिपतिं त्वां हवामहे।

हे श्री गणेश जी!

आप भिन्न-2 गणों के गणपति हैं आप उन गणपतियों के गणों के समूह के गणपति हैं। हम अपने इस शुभ कार्य में सर्वप्रथम आपका सम्मान के साथ आवाहन करते हैं।

हे गणेश जी ! इस संसार में हमारे जो सबसे अधिक प्रिय हैं, आप हमारा निरंतर उपकार करने, शत्रुओं से रक्षा करने हमारे सम्मान एवं समृद्धि की रक्षा करने के कारण उनसे भी अधिक प्रिय हैं। हम अपने इस शुभ कार्य में सर्वप्रथम आपका सम्मान के साथ आवाहन करते हैं।

हे गणेश जी ! इस संसार में जो सबसे बड़े निधि, धन के कोष हैं, उन निधियों के जो स्वामी हैं आप उन स्वामियों के भी स्वामी हैं हम अपने इस शुभ कार्य में सर्व प्रथम आपका ससम्मान आवाहन करते हैं।

एक वर्ग किलोमीटर के लिए 10. टन गैस चाहिए

अमेरिकी रासायनिक अस्त्र विशेषज्ञ गार्डन एम. बर्क का कहना है कि इराकी रासायनिक अस्त्रों से कोई खतरा नहीं
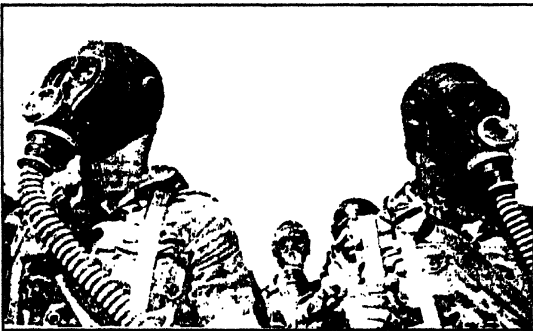
उपर्युक्त गणेश जी के चित्र के साथ चिपकाए् हुए् दूसरे चित्र को ध्यानपूर्वक देखें। यह चित्र किसी न किसी रूप में गणेश जी के चित्र के समान ही प्रतीत होता है। गणेश जी का शिर एवं मुख का भाग उपकरणों के साथ बहुत प्राचीन काल से निरन्तर इसी रूप में स्वीकृत एवं मान्य होने के कारण उपकरणों सहित स्वीकार कर लिये जाने के कारण हाथी के शिर के समान होने के कारण हाथी का शिर ही स्वीकार कर लिया गया है। फिर इस सम्बन्ध में इसी प्रकार की अनेक कथाओं को मान्यता मिल गई है। इस प्रकार हम वास्तविकता से दूर होते गये और पिता शिव जी के द्वारा अनावश्यक रूप से पुत्र गणेश जी का शिर काटा गया और उस पर हाथी का शिर काटकर जोड़ा गया आदि बातों को हम स्वीकार करते गये।

वास्तविकता यह है कि प्राचीन काल के दैवी, ईश्वरीय आश्चर्य उत्पन्न करने वाले शस्त्रास्त्रों की भान्ति आज भी अनेक आश्चर्यजनक शस्त्रास्त्रों, शक्तियों तथा रसायनिक अस्त्रों का आविष्कार किया गया है यथा-

प्रथम विश्वयुद्ध (१९१४ ई० से १९१९ ई० तक) एक **'मस्टर्ड गैस'** का आविष्कार हुआ। यह गैस वायु में मिल कर शरीर की खाल को जला देती है और श्वास के द्वारा शरीर में प्रवेश करके मार भी देती है किन्तु कम मारती है। हां जब यह शरीर में प्रवेश कर जाती है किन्तु मारने पूर्ण रूप से समर्थ नहीं हो पाती तब यह उन लोगों को जीवन भर के लिये ठीक प्रकार से जीवित रहने में असमर्थ बना देती है। उनको श्वास लेने में जीवन भर कठिनाई होती रही। एक प्रकार से जीवित लाश को ढोते रहे।

द्वितीय विश्वयुद्ध मे जर्मनी ने एक **'सैरिन गैस'** नामक रासायनिक पदार्थ गैस का आविष्कार किया। इस गैस का प्रभाव कुछ समय तक ही रहता है। यह गैस अलकोहल की तरह उड़ती है। इससे शरीर की खाल भी कोई विशेष रूप से नहीं जलती। हाँ जब यह श्वास के माध्यम से शरीर के अन्दर पहुँचती है तब इससे मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। यह सैरिन गैस पिन की नोक पर जितनी मात्रा में आ सकती है केवल उतनी मात्रा किसी भी जीवित प्राणी के प्राणों को समाप्त कर देने के लिये पर्याप्त है।

यह सैरिन गैस "वी एक्स" की तरह होती है जो पेड़ पौधों की पत्तियों, फूलों की पत्तियों पंखड़ियों पर पड़ी रहती है। मनुष्य जैसे ही इसके सम्पर्क में आता है वह अपना प्रभाव दिखलाती है। संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् महाकवि कालिदास द्वारा विरचित रघुवंश महाकाव्य के अष्टम सर्ग में आता है कि :-

कुसुमैर्ग्रथितामपार्थिवैः स्रजमातोद्यशिरोनिवेशिताम्।

अहरत्किल तस्य वेगवानधिवासस्पृहयेव मारुत: ।। श्लोक ३४ ।।
अभिभूयविभूतिमार्तवीं मधुगन्धातिशयेन वीरुधाम् ।
नृपतेरमरस्त्रगवाप सा दयितोरुस्तनकोटि सुस्थितिम् । ।श्लोक ३६ ।।
क्षणामात्रसखीं सुजातयो: स्तनयोस्तामवलोक्य विह्वला ।
निमिमील नरोत्तमप्रिया हृत चन्द्रा तमसेव कौमुदी ।। शलेक ३७ ।।
वपुषा करणोज्झितेन सा निपतन्ती..........................३८ ।।
कुसुमान्यपि गात्रसंगमात्प्रभवन्त्यायुरपोहितं यदि ।
न भविष्यति हन्तसाधनं किमिवान्यत्प्रहरिष्यतो विधे: ।।४४ ।।

इस सैरिन गैस का प्रभाव खुले वायुमण्डल में शीघ्रातिशीघ्र होता है जो बहुत घातक होता है किन्तु यह सैरिन गैस का प्रभाव वातावरण में अधिक लम्बे समय तक नहीं रहता और मकानों के अन्दर भी अधिक प्रभावित नहीं करता। इसीलिये उपर्युक्त प्रकरण में ही आगे कहा गया है :-
स्त्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम् ।।४६ ।। ?

अभी खाडी के युद्ध (अमेरिका तथा सहयोगी देश और इराक के मध्य होने वाला युद्ध) में एक और प्रकार की गैस का आविष्कार किया गया है जो पीले रंग के पाउडर के रूप में होती है। जिसका प्रभाव देर तक रहता है। यह रासायनिक गैस की प्रक्रिया अन्य दूसरे गैसों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली एवं घातक होती है। इसका एक प्रधान कारण यह भी है कि इस गैस के प्रभाव को रोकने अथवा समाप्त करने के लिये सैनिक लोग जिस गैस मास्क फिल्टर को धारण करके युद्ध क्षेत्र में कार्य करते हैं वह गैस मास्क फिल्टर इस पीले रंग पाउडर वाली गैस के प्रभाव को रोकने अथवा समाप्त करने में समर्थ नहीं है क्योंकि गैस मास्क फिल्टर का कार्बन उतनी शीघ्रता से इस गैस को निरस्त नहीं कर सकता और फिर इस पीले रंग की पाउडर वाली गैस का प्रभाव वायुमण्डल में कई दिनों तक बना रहता है। अत: तनिक सी असावधानी होने पर यह गैस विपक्ष के लिये अत्यधिक घातक परिणाम वाली सिद्ध होती है।

इसके अतिरिक्त एक और प्रकार की गैस भी होती है जिसे रोगाणु युद्ध वाली गैस कहते हैं किन्तु इस गैस पर गैस का प्रयोग करने वालों का पूर्ण से नियन्त्रण नहीं हो पाता क्योंकि इस गैस का प्रसार और प्रभाव अधिकतर वायु के प्रवाह पर निर्भर होता है। अत: इस गैस के प्रयोग के लिये अवसर की उयुक्तता के लिये बहुत अधिक विचार करना आवश्यक है। इसीलिये इसका प्रयोग बहुत सफल एवं क्रियाशील वैज्ञानिक की सम्मति पर निर्भर करता है।

इन उपर्युक्त मस्टर्ड गैस, सैरिन गैस, पीले रंग के पाउडर वाली गैस तथा रोगाणुयुद्ध गैस के अतिरिक्त एक और भयंकर गैस होती है जिसको "टाक्सिन" गैस कहते हैं। इसे

बोटालिज्म टॉक्सिन के रूप में भी जाना जाता है। इस बोटोलिज्म टॉक्सिन के सम्बनध में वैज्ञानिकों एवं शस्त्र विशेषज्ञों का मत है कि यह दुनिया का सबसे भयंकर हानिकारक एवं मारक जहर होता है। सौ ग्राम बोटोलिज्म टॉक्सिन के प्रयोग से एक समय में एक साथ लाखों लोगों को प्राणहीन किया जा सकता है मारा जा सकता है। इसके साथ-साथ इस के प्रयोग से वायुमण्डल पूर्ण रूप से प्रभावित एवं दूषित हो जाता है जिसके फलस्वरूप जिस पर इसका प्रयोग किया जाता है न केवल वही प्रभावित होता है न केवल उसी की मृत्यु होती है अपितु उसके आसपास का काफी दूर-दूर तक का विस्तृत क्षेत्र भी प्रभावित हो जाता है।

अमेरिकी वैज्ञानिक रासायनिक विशेषज्ञ, अस्त्रविशेषज्ञ तथा नीति विश्लेषक गार्डन एम०वर्क ने अमेरिका के साथ होने वाले इराक के खाड़ी के युद्ध के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि "इराक के पास लगभग १००० एक हजार टन गैस है जिसमें ९०% अर्थात् ९०० टन मस्टर्ड गैस है और एक वर्ग किलोमीटर के लिये १० टन गैस की आवश्यकता होती है। इस प्रकार यह १००० एक हजार टन गैस इस खाड़ी के युद्ध में यदि" इराक प्रयोग भी कर देता है तो वह अमेरिकी सैनिकों के लिए अधिक भयावह सिद्ध नहीं हो सकती क्योंकि अमेरिकी सैनिकों के पास में गैस के प्रभाव को रोकने के लिये गैस मास्क फिल्टर काफी मात्रा में उपलब्ध हैं।

अमेरिकी रसायन शस्त्रविशेषज्ञ गार्डन एम० वर्क की इस राय के विपरीत सोवियत रसायन शस्त्र विशेषज्ञ कर्नल जनरल स्तानिस्लाव पेत्रोव का मानना था कि इराक के पास दो हजार से लेकर चार हजार टन के रासायनिक पदार्थ होंगे जिनमें मस्टर्ड गैस, सैरिन गैस, और हाइड्रोसायनिक एसिड तथा बोटोलिज्म टॉक्सिन आदि सभी गैसें हैं। हाँ सोवियत रसायन शस्त्रविशेषज्ञ स्तानिस्लाव पेत्रोव इतना अवश्य स्वीकार करते हैं कि बोटोलिज्म टॉक्सिन आदि सभी गैसें हैं। हाँ सोवियत रसायन शस्त्र विशेषज्ञ स्तातिस्लाव पेत्रोव इतना अवश्य स्वीकार करते हैं कि बोटोलिज्म टॉक्सिन इराक की जलवायु में अधिक समय तक कारगर सफल सिद्ध नहीं हो सकती। अत: उसका होना अधिक भयावह अथवा हानिकारक नहीं है।

देवताओं के नायक गणेश जी का युद्ध कभी रावण के साथ भी हुआ था। निश्चित है कि इस युद्ध में एक पक्ष देवताओं का था, देवताओं की सेना का नेतृत्व श्री गणेश जी कर रहे थे और दूसरा पक्ष असुरों का था। असुरों की सेना का नेतृत्व रावण कर रहा था। किन्तु यह युद्ध कब और कहां पर हुआ तथा इस युद्ध का क्या परिणाम हुआ इसका पूर्ण विवरण प्राप्त नहीं होता। इस युद्ध में रावण ने अपनी गैस शक्ति का गणेश जी पर प्रयोग किया किन्तु गणेश जी असुरों और राक्षसों की इस गैस की विचित्र शक्ति के प्रभाव को भली प्रकार से जानते थे इसीलिये वे प्रतिक्षण हाथी के मुख रूपी उस गैस के प्रभाव को रोकने

वाले यन्त्र (गैस मास्क) को मुख के उपर धारण किये रहते थे जिसके कारण रावण द्वारा प्रयुक्त उस विषैली प्राणों को हरने वाली गैस का गणेश जी पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। राक्षसराज रावण अपनी उस प्राणों को हरने वाली गैस की भयंकर शक्ति को पूर्ण रूप से निष्प्रभावी हुआ देखकर गणेश जी की अद्भुत क्षमता पर विचार करने लगा और तब उसे गणेश जी की अद्भुत शक्ति का रहस्य तथा गैस की शक्ति के निष्प्रभावी होने का कारण समझ में आया। गणेश जी के द्वारा मुख और शिर पर धारण किया हुआ वह हाथी के मुख के सदृश गैस निरोधक यन्त्र (गैस मास्क) गैस की इस शक्ति को निष्प्रभावी कर रहा था। राक्षसराज रावण ने बहुत अधिक क्रोधित होकर अवसर पाकर उस गैस निरोधक यन्त्र के दोनों ओर दाँत के सदृश बाहर निकले हुए वायु को शुद्ध करने वाले दोनों दाँत रूपी यन्त्रों को तोड़ना चाहा किन्तु गणेश जी की अत्यधिक सतर्कता और सावधानी के कारण वह दोनों को तोड़ने में समर्थ न हो सका, हाँ एक दाँत रूपी यन्त्र को अवश्य तोड़ दिया। इसका संक्षेप में नारद जी के मुख से वर्णन कराते हुए देववाणी संस्कृत के प्रसिद्ध मूर्धन्य विद्वान् महाकवि माघ अपने प्रसिद्ध महाकाव्य "शिशुपालवधम्" के प्रथम सर्ग में इस प्रकार कहते हैं कि-

विदग्धलीलोचितदन्तपत्रिका चिकीर्षया (विधित्सया) नूनमनेन मानिना।
न जातु वैनायकमेकमुद्धृतं विषाणमद्यापि पुनः प्ररोहति।।श्लोक ६०, सर्ग १।।
अनेनमानिना = रावणेन, विषाणं-विषाणं पशुश्रृंगेस्यात्क्रीडाद्विरददन्तयोः इत्यमरः।

अर्थात् विदग्धलीला विलासक्रीड़ा में सहायक कर्णाभरण को बनाने के लिये घमण्डी इस रावण ने गणेश जी का एक दांत इस प्रकार (जड़ से) उखाड़ा कि वह आज भी फिर से पैदा नहीं हो पा रहा है। कहने का अभिप्राय यह है कि रावण गणेश जी के दांत का महत्व भली प्रकार समझता था इसलिये गणेश जी के सामरिक युद्ध की शक्ति को कम करने के लिये रावण ने ऐसा किया।

गणेश जी को लम्बोदर कहा जाता है। वास्तविकता यह है कि शत्रु, राक्षस, असुर, दानव किसी भी समय अचानक देवताओं पर आक्रमण कर देते थे। उनके आक्रमण को रोकने तथा प्रहार से बचने के लिये अपने यन्त्रों को निरन्तर शरीर पर धारण किये रहते थे जिससे उनका शरीर स्थूल प्रतीत होता था। भेद को गुप्त रखने के लिये उन्हें लम्बोदर कहा गया। आज भी जिस प्रकार शत्रु के प्रहार से सुरक्षा हेतु बुलैटप्रूफ जाकेट को धारण किये रहते हैं अथवा छत्रपति शिवाजी ने अफजल खाँ के अचानक होने वाले आक्रमण से बचने के लिये अपने रेशमी वस्त्रों के नीचे लौह कवच और शिरस्त्राण से उनकी पूर्ण सुरक्षा हुई थी तथा सिक्खों के गुरु जी के द्वारा अपनी सुरक्षा तथा शत्रुओं पर आक्रमण हेतु पंचप्यारों के लिये केश, कंघा, कड़ा, कटार और कच्छा प्रत्येक समय धारण करना अनिवार्य बना दिया था। इसी प्रकार गणेश जी देवताओं की सेना के प्रधान नायक, युद्ध एवं सुरक्षा के लिये प्रत्येक समय सन्नद्ध तैयार हरने वाले एक सशक्त देव नायक थे।

श्री गणेश जी को सभी विद्वान् लम्बोदर भी कहते हैं। क्या वास्तव में गणेश जी लम्बोदर हैं ? इस प्रश्न का उत्तर है "गणेश जी लम्बोदर बड़े पेट वाले नहीं हैं। गणेश जी देवताओं के द्वारा अपने ऊपर सौंपे गये दायित्व के निर्वाह के लिये युद्ध से सम्बन्धित उपकरणों को सदैव अपने साथ सतर्कतापूर्वक धारण किये रहते हैं। शत्रु वर्ग तनिक-सा अवसर प्राप्त करके कब आक्रमण कर बैठे ? कब आग्नेयास्त्रों का प्रयोग कर बैठे ? इसका कोई समय, कोई विश्वास नहीं, इसीलिये वे युद्ध के लिये सदैव सतर्कता के साथ तैयार रहते थे तथा राक्षसों द्वारा प्रयुक्त गैस आदि से बचने के लिये अपने मुख पर गैस मास्क फिल्टर तथा अपने वस्त्रों के नीचे पेट और कमर से सटाये हुए आक्सीजन प्राणवायु से परिपूर्ण यन्त्रों को धारण किये उनके ऊपर लौहकवच (शिवाजी की भांति, तथा आज के नेताओं की भांति बुलट प्रूफ जाकेट के सामान) धारण किये रहते थे जिससे पूर्ण सतर्कता के साथ किसी भी समय युद्ध कर सकें और देवताओं द्वारा उनकी रक्षा के दायित्व का सफलतापूर्वक निर्वाह कर सकें।"

इस प्रकार शत्रुओं के विनाश का प्रयत्न सदैव ही होता रहा है। जब जिस भी वर्ग को इस प्रकार का अवसर प्राप्त हुआ उसने अपनी पूर्ण शक्ति के साथ उसका प्रयोग करके दूसरे पक्ष का विनाश कर दिया विशेष रूप से दुर्बल अथवा पराजय की सम्भावना करने वाला पक्ष इस प्रकार के कार्य करता है। यहां तक के देवता भी अपने शत्रुओं शक्तिशाली असुरों दानवों का इस प्रकार विनाश करते थे। यथा:-

मन्त्रो हीनो स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।।
शपथैः सन्धितस्यापि न विश्वासं व्रजेत् रिपोः राज्यलाभोद्यतो वृत्रः शक्रेण शपथैः हतः।।
न विश्वासं विना शत्रुर्देवानामपि सिध्यति, विश्वासात्त्रिदशेन्द्रेण दितेर्गर्भो विदारितः।।

आज के युग में भी शक्तिशाली शत्रु की पराजय का कारण उसकी असावधानी और शक्तिहीन पक्ष की विजय का कारण उसकी सतर्कता एवं सावधानी बन जाती है। छत्रपति महाराज शिवाजी अपने प्रबल शत्रु अफजल खां से मिलने के लिये जाते समय यदि अपने रेशमी कुर्ते के नीचे लौह-कवच धारण न करते तो निश्चित रूप से अफजल खाँ के कपट का शिकार होकर मार दिये जाते और यदि बघनख (व्याघ्र का पंजा) धारण न करते तो भले ही शिवाजी की हत्या न हो पाती किन्तु शक्तिशाली अफजलखाँ के द्वारा उनको कैद अवश्य ही कर लिया जाता। आज के युग में सर्वाधिक शक्तिशाली समझे जाने वाले देश अमेरिका के सर्वाधिक सुरक्षित राष्ट्रपति जानसन कैनेडी की कार से यात्रा करते समय सब के देखते देखते गोली मारकर हत्या कर दी गई। भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री जी की तनिक सी असावधानी से विष का प्रयोग करके हत्या कर दी गई। भारत की

पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी की षड्यन्त्र करके उनके निवास स्थान जो पूर्ण सुरक्षित था वहीं पर गोली मार कर हत्या कर दी गई। इसी प्रकार पूर्ण सतर्क एवं सावधान होते हुए भी भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी की आत्मघाती दस्ते के सदस्य के द्वारा हत्या कर दी गई। पाकिस्तान के भूतपूर्व राष्ट्रपति जियाउलहक की विमान गिराकर हत्या कर दी गई आदि। श्री गणेश जी बुद्धि के सर्व प्रधान देवता हैं। वे शत्रुओं के द्वारा इस प्रकार के किये जाने वाले सम्भावित षड्यन्त्रों दुर्घटनाओं आदि से भली प्रकार से परिचित थे। अभिज्ञ थे, अत: सर्वदा सतर्क रहते थे, ऐसा होना उनके लिये और उनके देवताओं की सुरक्षा रूपी दायित्व के निर्वाह के लिये नितान्त आवश्यक था।

अभी कुछ समय पूर्व आज के इस वैज्ञानिक युग में इटली के सिसली नामक द्वीप में स्ट्राम्बोली नामक ज्वालामुखी पर्वत में उस समय जबकि वह अपनी पूर्ण प्रचण्ड शक्ति के साथ भयंकर रूप में अग्नि को उगल रहा था एक वैज्ञानिक अपने पूर्ण उपकरणों, यन्त्रों एवं साधनों को साथ लेकर उसके अन्दर प्रविष्ट हुआ और उसके अन्दर से अनेक पदार्थों तथा पदार्थों के नमूनों को साथ लेकर बाहर आया। उसने एस्बेस्टस के वस्त्रों एवं एस्बेस्टस के ही रस्सों का प्रयोग किया जो भयंकर अग्नि में जल नहीं सकते थे। ऑक्सीजन (प्राणवायु) के यन्त्रों एवं उपकरणों को निरन्तर अपने साथ रखा जिससे उस भयंकर अग्निकुण्ड के उच्च तापमान में सफलतापूर्वक शुद्ध वायु को प्राप्त करते हुए बाहर आ गया।

भारतवासी प्रारम्भ में वीरों की पूजा करने वाले रहे हैं। वीरों की पूजा भी उनके वीरवेष में करते रहे हैं। गणेश जी का उपरिवर्णित स्वरूप जिसमें उन्हें गजानन तथा लम्बोदर कहा गया है वास्तव में वे युद्ध के लिये तत्पर, युद्ध में काम आने वाले युद्ध के उपकरणों को धारण किये हुए वीरवेष में हैं। धीरे-धीरे उनके उपासकों ने उन्हें गजानन (हाथी के मुख के समान मुख वाले, न कि हाथी के मुख वाले) और लम्बोदर आदि कह कर उनकी उपासना की। परवर्ती उपासकों ने उन्हें सचमुच हाथी के मुख वाला और उसी आधार पर इस प्रकार की अनेक कल्पित कथाएँ तथा उनका भोजन कपित्थ (कैंथ, बेल जैसा फल) एवं जामुन को निर्धारित करके उनके उपासकों एवं सामान्य जन के मन में एक भ्रान्ति उत्पन्न कर दी।

गणेश जी बुद्धि के शक्ति के एवं युद्ध के देवता हैं। गण समूह के पति-गणपति, गणानां-गणों के जो गण-समूह उनके भी पति-स्वामी, इस प्रकार गणानां त्वा गणपतिं हवामहे, अर्थात् गणों के स्वामियों के गणों के स्वामी हे गणेश जी आपको हम अपने इस शुभकार्य को सुविधापूर्वक सम्पन्न किये जाने हेतु सादर ससम्मान आमन्त्रित करते हैं। प्रणाम करते हैं। आप हमारी रक्षा करें।

नम्र निवेदन इन सब का निर्णय करने के लिये सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि निर्णायक विद्वान् को बहुश्रुत होना आवश्यक है। उसे अपने विषय के साथ अन्य विषयों का

भी पर्याप्त अध्ययन करना अनिवार्य है। इस सम्बन्ध में विद्वान् मनीषियों का मत है कि:-

एकं शास्त्रमधीयनो न विद्याच्छास्त्रनिश्चयम्।
तस्माद् बहुश्रुत: शास्त्रं विजानीयाच्चिकित्सक:।।सुश्रुत।।

अध्ययन और बहुश्रुत होने के उपरान्त उसे एक पक्षीय न होकर पूर्ण रूप से निष्पक्ष होना चाहिये, क्योंकि एकपक्षीय विद्वान् केवल अपने ही पक्ष का समर्थन करेगा। बाल्मीकि जी के सम्बन्ध में विक्रमांकदेव चरितम् के रचयिता महाकवि श्री विल्हण ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं :-

लंकापते: संकुचितं यशो यद् यत् कीर्तिपात्रं रघुराजपुत्र:।
स सर्व एवादिकवे: प्रभाव: न कोपनीया: कवय: क्षितीन्द्रै:।।
विक्रमांकदेवचरितम् प्रथमसर्ग श्लोक २७।।

ऐसी स्थिति में हमें निर्णायक विद्वानों को महाकवि कालिदास के इस मत को मानना चाहिये-

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्।
सन्त: परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढ: परप्रत्ययनेयबुद्धि:।।
(मालविकाग्निमित्रम् प्रथम अंक, श्लोक २)

"अन्यतरत्" का अर्थ "किसी एक को" न करके "जिसमें जितना श्रेष्ठ होता है उसके उतने भाग को" और "परप्रत्ययनेय" का अर्थ "दूसरे के द्वारा बताया हुआ न करके केवल एक पक्षीय करना चाहिये"। अत: इस सम्बन्ध में बहुश्रुत निष्पक्ष विद्वान् निर्णायक ही प्रमाण हैं।

टिप्पणी : इस लेख पर भूतपूर्व शंकराचार्य स्वामी सत्यमित्रानन्द गिरि ने टिप्पणी करते हुए लिखा है- "उक्त लेख मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा। लेखक ने परिश्रम पूर्वक भारतीय साहित्य का अध्ययन करके गणपति आदि देवताओं का नूतन स्वरूप बताने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। रूढ़िवादी मान्यताओं का परिवर्तन आवश्यक है। मेरा विश्वास है कि मनीषी-विद्वान् लेखक के चिन्तन का आलोड़न करेंगे और उसे स्वीकार करने का साहस भी प्रगट करेंगे।

-सम्पादक

आगामी जयन्ती (एक अगस्त) पर विशेष-

मौद्गल्यकृत अथर्वभाष्य की समीक्षा

डा० दिनेशचन्द्र शास्त्री
वेदविभाग, गु०.कां०.वि०.वि. हरिद्वार।

अद्भुत वाग्मी, विचित्र ऊहा के धनी, उद्भट विद्वान् शास्त्रों के तलस्पर्शी अध्येता, गुरुकुल कांगड़ी के यशस्वी स्नातक और अध्यापक, आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब के लब्ध-प्रतिष्ठ उपदेशक एवं प्रधान आर्य समाज के सम्मान्य विद्वान् और प्रतिष्ठित नेता, हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के सत्याग्रही, उच्चकोटि के शास्त्रार्थकर्त्ता, प्रगल्भ लेखक तथा कुशल वक्ता मुद्गल गोत्रोत्पन्न स्वामी समर्पणानन्द जी महाराज (पं. बुद्धदेव विद्यालंकार) उन विद्वत्-सन्त-शिरोमणियों में से हैं जो अपने आदर्श जीवन के प्रत्येक क्षण में प्रवचन-पीयूष-वर्षण से लोक-कल्याणकारी कार्यों का प्रचार करते रहे। इसी विश्व कल्याण की भावना से ये जगच्छ्रेयोविधायिनी अपनी वाणी को लेखनीबद्ध भी कर दिया करते थे। स्वामी जी महाराज की लेखनी स्रोतस्विनी से निःसृत छोटे-बड़े लगभग ३२ ग्रन्थ हैं[१], जिनमें अथर्ववेद के प्रथमकाण्ड के १२ वें सूक्त तक का भाष्य एवं चतुर्दश काण्ड का भाष्य भी मिलता है। हम यहाँ उनके अथर्ववेद के प्रारम्भिक ५८ मंत्रों (काण्ड १, सू० १२ तक) के भाष्य का ही समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं। इससे वेद के विद्यार्थी ही नहीं अपितु वेदों पर आस्था रखनेवाले जनसामान्य भी लाभान्वित हो सकेंगे।

स्वामी समर्पणानन्द जी का व्यक्तित्व, चिन्तन तथा उनकी साधना बहुमुखी एवं बहुआयामी थी। उन्होंने अथर्ववेदीय शौनक शाखा की तर्कानुमोदित व्याख्या की है। यह व्याख्या उन्होंने आ. प्र. सभा पंजाब के प्रधान आचार्य रामदेव जी की आज्ञा से संवत् १९९३ में लिखी, जो कि उक्त सभा के मासिक मुखपत्र 'आर्य' में धारावाही छपती रही।[२] यह भाष्य संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में है और काण्ड, अनुवाक एवं सूक्त की दृष्टि से व्यवस्थानुसार मन्त्रों को रखकर लिखा गया है। वर्तमानकाल में इस भाष्य का नवीन संस्करण गुरुकुल प्रभात आश्रम, मेरठ और समर्पण शोध संस्थान साहिबाबाद से छपा है।

बड़े दुःख की बात है कि उभयलोक का कल्याण करनेवाले[३] अथर्ववेद का यह भाष्य अधूरा है। परन्तु अधूरेपन से इसकी महत्ता कम नहीं आंकी जा सकती, क्योंकि भाष्यकार ने अपनी व्याख्या में सदियों से अछूते वेद के ऐसे अज्ञात रहस्यमय गूढ़ तत्वों को ढूंढकर प्रदर्शित किया है, जिससे वेदों पर आस्था रखने वाले किसी भी श्रद्धालु एवं

जिज्ञासु को सहज ही उन तत्वों का यथार्थ ज्ञान होकर वेद की आत्मा के दर्शन हो जाते हैं और वह वेदार्थ की ऐसी कुञ्जी प्राप्त कर लेता है कि कोई भी गुत्थी उलझती नहीं।

(१) **विषयगत विवेचन-**

(I) भाष्य-लेखन का प्रयोजन :- वेदभाष्य की परम्परा में प्रस्तुत वेदभाष्य स्वामी समर्पणानन्द जी की अनुपम देन है। इस भाष्य में वेद-मन्त्रों के आधार पर चिकित्साविज्ञान, राजनीतिविज्ञान, युद्धविज्ञान, ब्रह्मविज्ञान, सृष्टिविज्ञान, मनोविज्ञान आदि विषयों का विशेष विवेचन किया गया है[४] जिसके आधार पर अथर्ववेद के विषय में पाठक को कोई सन्देह नहीं रहता और जादू, सम्मोहन, मारण, उच्चाटन, भूत, प्रेत, पिशाच, कृत्तिका आदि परक कल्पनाप्रसूत तथा पूर्वाग्रह पर आधारित लोकप्रसृत अलीक मान्यताओं का स्वत: खण्डन होकर यह सिद्ध हो जाता है कि यह ब्रह्मवेद है, विज्ञान का वेद है।

भाष्यकार ने स्वयं इस भाष्य का प्रयोजन बताते हुए लिखा है- ' तेन च प्रीयताम्भगवान् यज्ञ पुरुष:' अर्थात् इस भाष्य से भगवान यज्ञ पुरुष का तर्पण होगा। इसी प्रयोजन को स्पष्ट करने के लिए भाष्यकार ने इतरवेदों के साथ इस बह्मवेद की प्रयोजनता भी इस प्रकार सिद्ध की है- 'ऋग्वेद में मनुष्य की जिज्ञासा की अग्नि को प्रज्वलित किया गया है। यजुर्वेद में उसी संगृहीत ज्ञान को लोक हित के लिए अपने स्वार्थ को अर्पण करके राष्ट्रोपयोगी कैसे बनाया जा सकता है इसका उपदेश किया गया है। सामवेद में एक विचित्र प्रकार की नव-रस-रुचिरा काव्य सृष्टि की रचना की गई है। इस रसमयी काव्य सृष्टि के अपने ही स्वतन्त्र नियम हैं, इसमें विधाता की अन्य सृष्टियों के नियम नहीं लगते। इस सृष्टि का निर्माण-तत्त्व आह्लाद है। आह्लादमय सामवेद में यद्यपि नव-रस हैं, तो भी वहां प्रधान रस वीर है। परन्तु इस अथर्ववेद का उदय उसी ज्ञान-राशि का यज्ञपुरुष के अङ्गभूत पुरुष व्यक्ति के लिए हितकारी तत्व दिखाने के लिए हुआ है।' (पृष्ठ सं० ४)

(II)- शरीर के उपयोगी तत्वों का वर्णन:- भाष्यकार की यह प्रतिज्ञा है कि इस वेद में शरीर के लिए उपयोगी तत्वों का वर्णन किया गया है- 'तत्र शरीरोपयोगि किमपि तत्वमस्मिन् वेदे प्रपञ्चितमित्यनुपदं व्याख्यास्यते।' (पृ० १) शरीरोपयोगी तत्वों का वर्णन होने से ही इस वेद का नाम आङ्गिरस है। शरीर की सारी चेष्टा दो कारणों से होती है १-पञ्चभूतों के संघात से बनी हुई शरीर की सात धातुओं के कारण और २- आत्मा

की शक्ति से प्रेरित होने वाले प्राण के कारण। रसायन शास्त्र के पण्डित हमें बताते हैं कि सात धातुओं का आधारभूत अङ्गार (कार्बन) नामक एक तत्व है। अङ्गार का ही दूसरा नाम अङ्गिरा भी है। प्राण का भी दूसरा नाम अंगिरा: है। अङ्गार और प्राण दोनों का ही नाम अंगिरा है यह ब्राह्मण ग्रन्थों में स्पष्ट लिखा है। प्राण और धातु दोनों को बताने वाले अंगिरा: की व्याख्या इस वेद में होने के कारण इसकी अंगिरस संज्ञा है। आंगिरस वेद के आविर्भाव का साधन बनने के गौरव को प्राप्त होने के कारण इसके आदि ऋषि का नाम भी अंगिरा: पड़ गया।

शरीर के हितकारी एंव उपयोगी तत्त्वो में जल, मुञ्ज, दर्भ (शर.) का वेद-मंन्त्रों के आधार पर उल्लेख करते हुए भाष्यकार ने लिखा है 'तेनान्त्रेषु मूत्र-सञ्चयवर्णनं न विस्मयावहन्तद्विदाम्। तस्य च निरोधश्शरेण-वार्य्यते। शर शब्देन च दर्भजलज्ञानानाङ्ग्रहणमिति प्रागुदाहृतम्। तदेषान्त्रयाणामपि प्रभावो मूत्र निरोधविनाश इति दर्शयिष्यामः। दर्भैरद्भिश्च तनूभृताम्मूत्रनिरोधो वार्य्यते।' (अथर्व. भा. १.३.५, पृ० ५८)

अर्थात् मूत्र का निरोध शर से दूर किया जाता है। शर शब्द से दर्भ, जल और ज्ञान का ग्रहण किया जाता है। दर्भ से और जल से पुरुष के मूत्र का निरोध दूर किया जाता है।

अथर्व .१.३.६ (पृष्ठ ६०)के भाष्य में भाष्यकार ने जलचिकित्साशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् जैसे चार्ल्स. डब्ल्यू. बकले आदि के "इण्डैक्स टू ट्रीटमेण्ट" के उद्धरण देते हुए जलचिकित्सा के बारे में स्पष्ट किया है कि कटि स्नान (**Hips bath**) और मेहन स्नान (**sitz bath**) से मूत्र-निरोध दूर किया जा सकता है।

अथर्व. १.३.५ के व्याख्यान में व्याख्याकार ने लिखा है कि शरीर का स्तम्भक वीर्य शर नामक ओषधि के सेवन तथा जलस्नान से बढ़ता है।(पृष्ठ स. ५६)

अथर्व काण्ड १, सू० ३ के भाष्य में भाष्यकार ने 'शर' शब्द को उपलक्षण मानकर मूत्र के प्रवाह की निरोधक चीजों को बाहर निकालने में समर्थ गोखरु आदि अन्य औषधियों का भी ग्रहण किया है।

मूत्र निरोधादि रोग के निवारक जल किस प्रकार प्राप्त होते हैं, उनमें श्रेष्ठता कैसे आती है यह उल्लेख करते हुए लिखा है- (सिन्धुभ्य: कर्त्वं हवि:, अथर्व १.४.३) अर्थात् नदी रूप से बहनेवाले जल प्रयत्न से घर में लाये जा सकते हैं, एवं इनको (अमूर्या उपसूर्ये याभिर्वा सूर्य: सह, अथर्व १.४.२) अग्नि के ताप से तपाकर निर्मल किया जा सकता है।

चरकसंहिता १-२ के अनुसार ओषध दो प्रकार के होते हैं। एक स्वस्थ को बलिष्ठ बनानेवाले और एक रोगी को नीरोग करनेवाले। जल में ये दोनों प्रकार के गुण हैं। इन गुणों का अथर्व. १.५.४ के भाष्य में वर्णन करते हुए लिखा है- 'जलों में औषध है। औषध रूप जलों के सेवन से पुरुष अमृत हो जाता है। अर्थात् वह पूर्ण आयु भोगता है।'

(अग्निं च विश्वशम्भुवम्, अथर्व० १.६.२) इस वाक्य के आधार पर भाष्यकार ने लिखा है कि- 'श्रुति में सम्पूर्ण रोगों के निवारण करने में समर्थ जल चिकित्सा शास्त्र का बीज पाया जाता है।' (पृ० ८०)

(III) **शल्य चिकित्सा-** भाष्यकार ने शल्य चिकित्सा के बारे में अथर्व. १. ३.७. के आधार पर लिखा है कि मूत्र के निरोध का प्रतीकार केवल जल, दर्भ या अन्य औषधियों से ही नहीं होता, अपितु समय-समय पर शलाका आदि शस्त्र के प्रयोग की भी आवश्यकता होती है- 'अथ मूत्रनिरोधस्य प्रतीकारो न केवलं जलेन दर्भादिशरजातिप्रविष्टौषधप्रयोगेण वा भवत्यपितु तत्काले काले शस्त्रप्रयोगमप्यपेक्षते।' (पृ० ६२)

अथर्ववेद में केवल उपस्थेन्द्रिय की ही शल्य-चिकित्सा नहीं, अपितु, समयानुसार बस्ति को भी खोलकर बस्ति के द्वार के निरोधक पथरी आदि को भी शल्यचिकित्सादि के द्वारा दूर करने का विधान है। इसलिए (विषितं ते बस्तिबिलम्, अथर्व १.३.८) के भाष्य में इसी प्रकार का संकेत करते हुए भाष्यकार ने लिखा है- 'शल्य प्रयोगेण न केवलं मेहनद्वारमेवानावरणीयं वैद्येनापितु यथाकालं बस्तिं विदार्य बस्ति द्वारनिरोधको ऽश्मादिरप्यपनेय इति।'
इसी प्रकार शरीरोपकारक अग्नि- तत्व[५], प्रसव यन्त्र[६] और रसायन[७] आदि विषयों का भी वर्णन किया गया है।

(IV) **अन्य-** मन्त्रों की व्याख्या करते समय देवतानुसार विविध विषयों का उल्लेख किया गया है। पुनरपि प्रसंगवश निम्न विषयों को भी विवेचित किया गया है। जैसे- प्राण और अपान; दार्शनिकता - ईश्वर, जीव प्रकृति; भक्ति का फल, प्रार्थना, मन्यु; राजसूय यज्ञ; वीर्य और दाई आदि।

दार्शनिक भाषा में परमेश्वर के सत्यस्वरूप, प्रकृति और भक्ति के फल को बताते हुए अथर्व १.२.१ के भाष्य में लिखा है- 'निरूतरोपासना प्रसादितभगवदनुकम्पा धारावर्षणं बिना ज्ञानार्जनसाधनभूता कुशाग्रा बुद्धिर्नोत्पद्यत इत्याह अस्य ज्ञानाख्य शरस्य पितरं भूरि-धायसं भूरीणां बहूनां स्थावरजंगमानां धारणकर्तारं पर्जन्यं तर्पयितारं

जनयितारं जनहितकरञ्च तं परमेश्वरं विद्मः जानीमः खलु। अस्य मातरं भगवदनुकम्पारूपबीजं गृहीत्वा ज्ञानजन्मदात्रीम्मातरं भूरिवर्पसं नानारूपां पृथिव्युपलक्षितां प्रकृतिमपि सुविद्मः। यद्यपि भगवदनुकम्पां बिना न ज्ञानमधिगम्यते तथापि तदधिकरणन्तु प्रकृतिरेव तद्विलोडनेनैव ज्ञानराशेर्लाभ इति भावः। यस्य हि नाम शरस्य भगवान् परमकारुणिको लोके सहस्रधाराभिरानन्दवर्षयिता परमेश्वरः पिता यस्य च जननी खल्वियं भगवती भूतधात्री कथमसौ न नियतं लक्ष्यवेधेन सौभाग्यं ममोत्पादयेत।' (पृ० १९)

इसी प्रकार अथर्व १.४.१. में परमेश्वर के स्वरूप और अथर्व १.१.१ के भाष्य में ईश्वरस्वरूप पूर्वक प्रार्थना पर प्रकाश डाला है।

त्रैतवादपरक वैदिक दार्शनिक मान्यता का उल्लेख करते हुए अथर्ववेद के प्रथम मन्त्र के 'त्रिषप्ताः' पद के भाष्य में भाष्यकार ने लिखा है- 'त्रयः सप्ताः। तीन सप्त। इस अर्थ में सप्त शब्द षप् समवाये धातु से बना हुआ क्त प्रत्ययान्त रूप मानना होगा। जो एक दूसरे में समवाय से रहते हों, सदा एक दसरे के साथ और एक दूसर में व्याप्त रहते हों उन्हें सप्त कहेंगे। ऐसे तीन सप्त जीव, ईश्वर और प्रकृति होंगे। इन्हीं तीनों ने संसार के सारे रूपों को धारण किया हुआ है।' (पृ० ८)

छठे सूक्त में ईश्वर की भक्तिपरायणता और भक्ति के नानाविध फलों का वर्णन किया गया है।[८] वैज्ञानिक प्रक्रिया से प्राण और अपान का विवेचन करते हुए अथर्व. १. ३.२ के भाष्य में लिखा है- यत्र ह्याचार्य्यैरन्तः प्रविशन्वायुरपानेत्याख्यया बहिर्निगच्छँश्च प्राणेव्याख्यया ऽभिहितस्स हि तत्र वानस्पत्यस्यास्माभिः प्रत्यक्षमुपलभ्यमानस्य सर्गस्यापेक्षया तथाऽख्यातः। तथा हि वानस्पत्यमिदं जगदस्माभिरुत्सृष्टेन वायुना प्राणिति, तदपानितेन च वायुना वयं जीवामः। यो ह्यस्माकमपानः स हि वीरुधां प्राणो यो वीरुधामपानः स एवास्माकं जीवनाधारतया प्राणः। न च वृक्षादौ प्राणनभावः इत्याक्षेपणीयम्। "येन प्राणन्ति वीरुध" इत्यथर्वसंहितायाम् (१/३२/१) दर्शनात्।' (पृ० ४१)

हमने यथामति संक्षेप में उपर्युक्त विषयों को ढूंढ़कर दिखाया है। इसी प्रकार यदि सूक्ष्म-दृष्टि से मुहुर्मुहुः प्रकृतवेदभाष्य का पारायण किया जाये तो कई अज्ञात वैज्ञानिक वैदिक तत्व मिल सकते हैं। क्योंकि वैदिक तत्वों पर स्वा० समर्पणानन्द जी की पहुंच प्रगल्भ एवं प्रामाणिक थी।

२ प्रकृत भाष्य की विशेषतायें

(I) भाष्य-लेखन का ढंग - स्वामी समर्पणानन्द प्रणीत इस अथर्वभाष्य का

सम्यगध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि यह भाष्य इस रीति या क्रम (ढंग) से लिखा गया है कि मन्त्र-व्याख्यान में किसी भी प्रकार का संशय न रह जाये। सूक्त के प्रारम्भ में ऋषि, देवता, छन्द और सूक्त-प्रसंग का पूर्वापर सम्बन्ध स्थापन के पश्चात् संहितापाठ, पदपाठ, अन्वय, मन्त्रों की विशद् व्याख्या (विवेचन), शब्दार्थ और अन्त में मन्त्र का भावार्थ स्पष्ट किया है। मन्त्र के प्रारम्भ में मन्त्र-प्रसंग को भी दिखाया गया है।

प्रत्येक मन्त्र के भाष्य में व्याकरण प्रक्रियान्तर्गत निरुक्तशास्त्र और व्याकरण शास्त्र के द्वारा क्रमश: निर्वचन एवं प्रकृति-प्रत्यय, आगम, विकार आदि का अनुसन्धान कर शब्द की सिद्धि भी की है। इस व्या.प्र. में श्री क्षेमकरणदास जी के भाष्य से विशेष सहायता ली गयी है। इसका उल्लेख करते हुए भाष्यकार ने प्रथम मन्त्र के भाष्य में लिखा है- 'व्याकरणप्रक्रियेयं श्री क्षेमकरणभाष्याद्विशेषत उद्ध्रियते। उपरिष्टादप्यस्य मान्यविदुषो भाष्यात् पदानां व्याकृतिप्रदानेन भूय: साहाय्यमादास्याम:। अतस्तस्य महान्तमुपकारं मन्वानास्तस्मै साञ्जलि नमस्कुर्म:।'

(II) **वेदार्थ-शैली**[१] - स्वामी समर्पणानन्द जी ने पुराण-प्रभावित वेदार्थ-शैली जिसमें बहुदेवतावाद, कर्मकाण्ड एवं विनियोगों की प्रधानता है, को न अपनाकर दूसरी महर्षि दयानन्द द्वारा प्राचीन यास्क-शैली के पुनरुद्धार स्वरूप विकसित शैली[१०] को ही अपने भाष्य में अपनाया है।

स्वामी जी ने कोई नवीन मान्यता स्थापित नहीं की है। उन्होंने आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक अर्थों के साथ व्यावहारिक (अधिराष्ट्र, अधिज्यौतिष आदि इतर प्रक्रियापरक) अर्थ कर अथर्ववेद की दैनिक जीवन में उपादेयता स्थापित की है। उनकी वेदार्थ-शैली के सिद्धान्त हैं-

(१) वेद के सब शब्द यौगिक हैं, योगरूढ़ हैं; रूढ़ नहीं।
(२) वेद ईश्वरीय ज्ञान है।
(३) इनमें मानव-इतिहास और भूत, प्रेत, पिशाच, कृत्तिका आदि का वर्णन नहीं है।
(४) वेदों के अर्थ देवतानुसार होने चाहिए; उनमें स्वर, छन्द का भी ध्यान रखना उपयोगी है।
(५) वेद ज्ञान सम्पूर्ण ज्ञान का स्रोत है; उसमें विकासवाद नहीं है, परन्तु अधिकतम विकास की प्रेरणा देता है।
(६) विकासवाद, अदृष्टवाद एवं विनियोगवाद- ये तीन वेद-विघातक वाद हैं परन्तु यौगिकवाद, समकक्षवाद तथा विज्ञाताश्रयवाद - ये तीनों ही वेदार्थ में परमसहायक हैं।

इस शैली को ही स्वामी जी ने अपने अर्थवभाष्य में स्थान दिया है। जिसके आधार पर इस भाष्य की विशेषतायें इस प्रकार हैं :-

(क) **मन्त्रार्थ देवता के अनुरूप हैं** - शब्द की व्युत्पत्ति एवं रचना पर ही वेद के शब्दों का अर्थ निर्भर करता है। एक मूल शब्द के अनेकों अर्थ होते हैं। विषयानुसार उनका मुख्य अर्थ स्थापित किया जाता है। देवता यह इंगित करता है कि यहां इस शब्द का विषयानुसार क्या अर्थ होना चाहिए[11], और वैसा करने पर ही समस्त शब्दों एवं मन्त्रार्थ की ठीक संगति बैठती है। अत: जब मन्त्र के पदों का देवता की दृष्टि से उनके आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक अर्थ किये जाते हैं, तभी मन्त्र का सत्यार्थ होता है। इस प्रकार देवता मन्त्रार्थ को सुस्पष्ट एवं नियन्त्रित करने में सहायक होता है।

देवता के अनुसार, व्यापक दृष्टि से मन्त्र के कई अर्थ तो हो सकते हैं, मगर सब शब्दों का अर्थात् मन्त्रान्तर्गत प्रत्येक पद का अर्थ देवता से- नियन्त्रित एवं सम्बन्धित (संगत) होना चाहिए। इसी बात की पुष्टि वेदार्थ प्रकाशक निरुक्तशास्त्र से भी होती है- ' न तु पृथक्त्वेन मन्त्रा निर्वक्तव्या:। प्रकरणश एव तु निर्वक्तव्या इति (नि० १३/१२)।' देवता मन्त्र का प्राण है, आत्मा है, केन्द्रबिन्दु है, मन्त्रार्थ का आधार और चिन्तनधारा का मार्गदर्शक है।

देवता-सम्बन्धी उपरोक्त तथ्य एवं विवेचन को ध्यान में रखकर ही स्वामी समर्पणानन्द जी का अथर्ववेद भाष्य के रूप में यह सफल प्रयास है। इसमें जहाँ मन्त्र के कई अर्थ किये हैं; वहाँ भी सब शब्दों का अर्थ देवता से नियन्त्रित एवं सम्बन्धित है। इस तरह के संकेत, भाष्य में स्थान-स्थान पर मिलते हैं, पुनरपि इसकी पुष्टि में हम भाष्यकार के निम्न वचन को ही उद्धृत करना उचित समझते हैं- 'इस प्रकार विविध क्षेत्रों में आप: के उस विषयक अर्थ की कल्पना कर लेनी चाहिये। इस भाँति इन मन्त्रों के अनेक अर्थ हो जायेंगे। इसलिये कहा है कि "अनन्ता वै वेदा : " वेद अनन्त हैं।' (पृ० ६८)

(ख) **प्रकृत भाष्य यौगिक-प्रक्रिया पर आधारित है** : यौगिक-प्रक्रिया का वेदार्थ में अत्यन्त महत्व है। निरुक्त के लगभग सभी आचार्य, विशेषकर आचार्य यास्क, वेदों के समस्त नाम-पद यौगिक हैं एवं वे सभी यौगिक प्रक्रिया से अर्थ का बोध ान कराते हैं- ऐसा मानते हैं। स्वामी समर्पणानन्द जी ने अपने भाष्य में प्राचीन शास्त्रीय इस यौगिक-प्रक्रिया का ही आश्रय लिया है। इससे दूसरे अनार्ष भाष्यों से वैदिक मान्यताओं के विषय में जो भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो गई थीं, उनका समूल निराकरण हो जाता है।

यौगिक-प्रक्रिया की विशेष देन है वैदिक शब्दों के विविध अर्थो को बताना। कोई शब्द लौकिक संस्कृत में जिस अर्थ में प्रचलित है उसका वही अर्थ वेद में भी हो, यह आवश्यक नहीं। वेद में शब्दों का अर्थ लौकिक शब्दों की अपेक्षा व्यापक है। यह सबको मानना ही पड़ता है, यदि ऐसा न मानें तो-

'अश्वा भवत वाजिनो गावो भवत वाजिनी:' (अथर्व १/४/४)। यहाँ 'वाजी' और 'वाजिनी' शब्द का क्या अर्थ करेंगे ? घोड़े घोड़े हो जावें और गौवें घोड़ी हो जायें। कदापि नहीं।

यहाँ सायण को भी 'वाज इति बलनाम' यह निरुक्त प्रमाण देकर 'अश्वा: बलयुक्ता भवथ' और 'गाव: प्रभूतंक्षीरा भवथ' ऐसा अर्थ करना पड़ा। इसी स्वर में स्वर मिलाते हुए, यौगिक-प्रक्रिया से प्रस्तुत मन्त्र का अर्थ- 'अश्वा: बलवन्तो भवथ तथा गावस्तद्गुणविशिष्टा भवथ' (पृ० ७२) करते हुए भाष्यकार ने इस प्रक्रिया का वैशिष्ट्य दर्शाते हुए डिण्डिम घोष किया है- 'वैदिक शब्दानां यौगिकत्वं न स्वीकुर्वताम्मते ऽश्वा भवथ वाजिन इति वाक्यस्य कथमर्थनिर्व्वहणं स्यादिति विभावनीयम्भाव-विद्भि: ।' अर्थात्, जो लोग वेद के शब्दों का यौगिक अर्थ स्वीकार नहीं करते हैं उन्हें इस मन्त्र के उत्तरार्ध की व्याख्या में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। क्योंकि रूढ़िवाद में अश्व का अर्थ भी घोड़ा होता है और वाजी का भी। 'वाजिनी' का अर्थ होता है घोड़ी। तब मन्त्र-खण्ड का अर्थ यह होगा कि 'हे घोड़ो, तुम घोड़े हो जाते हो और हे गौवो, तुम घोड़ी हो जाती हो।" कितना हास्यास्पद अर्थ है। इसी तरह द्वितीय अनुवाक के प्रारम्भ में भाष्यकार ने यौगिकवाद से 'मूत्र' शब्द के कई प्रकार के मल अर्थ कर लिखा है- 'मूत्र शब्देन च रुढिम्परित्यज्य योगमाश्रित्यान्येषामपि मलानामात्मन्यन्तर्भाव: कृत इत्यपि स्फुटीकृतम्' (पृ० ८३)।

(बस्तिबिलं समुद्रस्योदधेरिव, अथर्व. १/३/८) इस मन्त्रांश की व्याख्या भी भाष्यकार ने यौगिक प्रक्रिया की सहायता से की है तथा लिखा है- 'बस्तिबिलम् का दृष्टान्त होने के कारण समुद्र सागर न होकर, (उन्दी क्लेदने) उसका यौगिकार्थ ही लिया जायेगा। इस प्रकार उदधि शब्द का अर्थ होगा वह कृत्रिम जलाशय, जो कि वर्षाऋतु के जल को एकत्रित करके बनाया जाता है।'

इस प्रकार अनेकों अर्थ यौगिक-प्रक्रिया से इस भाष्य में किये गये हैं। विस्तार-भय से सबको दिखाना असंभव है। यौगिक प्रक्रिया के साथ-साथ भाष्यकार ने वैज्ञानिक प्रक्रिया का भी आश्रय लिया है। परन्तु, वह भी यौगिक प्रक्रिया से ही अनुप्राणित हैं।[१२]

(ग) <u>ब्राह्मणग्रन्थों का आश्रय</u> - वेदमन्त्रों की व्याख्या में ब्राह्मण ग्रन्थों का विशेष महत्त्व है। वेद व्याख्येय हैं और ब्राह्मणग्रन्थ व्याख्यान। स्वामी समर्पणानन्द जी

ने प्रस्तुत भाष्य में, अपने विवेचन को सुस्पष्ट करने के लिए जहां निरुक्तशास्त्र के वचनों का आश्रय लिया है वहीं व्याकरण की संगति के अभाव में एवं अर्थ को अधिक सुसंगत करने के लिए ब्राह्मणग्रन्थों के उद्धरणों का सहारा भी लिया है। ५८ मन्त्रों के कलेवर वाले इस भाष्य में ४५ प्रमाण ब्राह्मणग्रन्थों के हैं। जिससे स्वा. समर्पणानन्द जी के तद्विषयक साहित्य-मर्मज्ञत्व का बोध होता है। उनके इस भाष्य में ब्राह्मणग्रन्थों के उद्धरणीय अंशों की विपुलता को देखकर यदि हम यह कहें कि उनका प्रत्येक अर्थ और विवेचन ब्राह्मण वचनों के उद्धरणों से अलंकृत है तो कोई अत्युक्ति नहीं। ब्राह्मणग्रन्थों के जिन प्रमाणों को भाष्यकार ने उद्धृत किया है उनका विवरण इस प्रकार है-

(१) ब्रह्माग्निः । श. १/३/३/१९
(२) ब्रह्म वा अग्निः । श. ५/३/५/३२
(३) ब्रह्म ह्यग्निः । श. १/५/१/११
(४) अग्निरु वै ब्रह्म। श. ८/५/१/१२
(५) अग्निरेव ब्रह्म। श. १०/४/१/५
(६) ब्रह्म ह्यग्निस्तस्मादाह ब्राह्मणेति । श. १/४/२/२
(७) वाग् वै बृहती तस्या एषः पतिः ।श. १४/ ४/१/२२
(८) ब्रह्म वै बृहस्पतिः। श. ३/९/१/११
(९) क्षत्रं वा इन्द्रः । श. ३/९/१/१७
(१०) द्वयं वा इदं न तृतीयमस्ति। आर्द्र चैव शुष्कं च। यच्छुष्कं तदाग्नेयं यदार्द्र तत् सौम्य।। श. १/६/२/२३
(११) रेतो वै सोमः। श. १/९/२/९
(१२) पूषा वै. देवानां भागदुघः। श. ५/३/१/९
(१३) एते खलु वादित्या यद् ब्राह्मणाः। तै० १/१/९/८
(१४) पूषा भागदुघोऽशनं पाणिभ्यामुपनिधाता। श. १/१/२/१७
(१५) असुराः कुसीदिनः । श. १३/४/३/११
(१६) एष वै शुक्रो य एष तपति। श. ४/५/९/६
(१७) रेतो देवतेति। श. २/३/१/१
(१८) प्राणोदानौ वै मित्रावरुणौ। श. १/८/३/१२
(१९) प्राणो वै मित्रः। श. ६/५/१/५
(२०) ब्रह्ममित्रः। श. ४/१/४/१
(२१) प्राणोदानौ मित्रावरुणौ। श. ३/२/२/१३
(२२) उदानो ह्यन्तर्यामो ऽमुं (दिवं) ह्येव लोकमुदनन्नभ्युदमिति। श. ४/१/२/२६

(२३) वज्रो हि वा आपस्तस्माद् येनैता यन्ति निम्नं कुर्वन्ति यत्रोपतिष्ठन्ते निर्दहन्ति ब्राह्मण (पृ० ४३)

(२४) मित्र एव क्रतुर्वरुणो दक्षो ब्रह्मैव मित्रः क्षत्रं वरुणोऽभिगन्तैव ब्रह्मकर्ता क्षत्रिण इति। श. ४/१/४/१

(२५) मित्रस्त्वा परिबध्नीतामिति०। श. ३/२/४/१८

(२६) अनृते खलु वै क्रियमाणे वरुणो गृह्णाति। तै. ब्रा. १/७/२/६

(२७) वरुणो वा एतं गृह्णाति०। श. १२/७/२/१७

(२८) वरुण्यं वा एतत्। श. २/५/२/२०

(२९) वरुण्यो वै ग्रन्थिः। श. १/३/१/१६

(३०) तस्मादेव पत्न्या योक्त्रे० । श. ३/२/४/१८

(३१) योषा वै आपः। श. १/१/१/१८

(३२) सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहेति तदुभयतो०। श. २/३/१/३३

(३३) अग्नेरेवैतानि नामानि घर्म्मः, अर्कः, शुक्रः, ज्योतिः, सूर्यः। श. ९/४/२/२५

(३४) तै० ब्रा० ३/९/१७/५

(३५) मनो वै देवताघ्नम्। श. १/४/३/६

(३६) नामृतत्वस्या शास्ति। श. २/२/२/१४

(३७) वीर्यं वा अश्वः। श. २/१/४/२३

(३८) क्षत्रं वा अश्वः। श. ६/४/४/१२

(३९) या गौः सा सिनीवाली। ऐ. ३/४८

(४०) योषा वै सिनीवाली। श. ६१५/१/१०

(४१) ऐ० ब्रा० ७/१३

(४२) उभयं वै तदन्नं यद् दर्भा आपश्च ह्योता ओषधयश्च। श. ७/२/३/२

(४३) आपो दर्भाः। श. २/२/३/११

(४४) आपो वै दर्भाः। तै० ३/३/२/१

(४५) तै० ब्रा० २/८/३/८

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी समर्पणानन्द जी ने यौगिक-प्रक्रिया को अपनाते हुए तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के वचनों को उद्धृत करके अपने भाष्य को अधिक तर्कसंगत, बोधगम्य एवं चमत्कृत कर दिया है।

ब्राह्मणग्रन्थों के अतिरिक्त अथर्ववेदीय मन्त्रों का अभिप्राय भाष्यकार ने आरण्यक, उपनिषद्, धर्मशास्त्र, गृह्यसूत्र, आयुर्वेद एवं संस्कृत वाङ्मय के अन्य अनेक ग्रन्थों तथा आंग्लभाषा में प्रणीत शरीर विज्ञान से सम्बन्धित ग्रन्थों एवं कोशों के प्रमाणों से स्पष्ट किया है। जिनका विवरण इस प्रकार है-

संस्कृत वाङ्मय के ग्रन्थ - बाल्मीकि रामायण, महाभारत, चरकसंहिता, न्यायदर्शन, न्यायवात्स्यायन भाष्य, आपस्तम्ब धर्मसूत्र, पारस्करगृह्यसूत्र, जै० उ०, प्र०उ०, नीतिशतक, अमरकोश, भावप्रकाश, राजनिघण्टु, मनुस्मृति, निरुक्त, निघण्टु, गीता, अष्टाध्यायी, उणादिकोश, तै० आरण्यक, फिट् सूत्र और संस्कार विधि आदि। कल्याण मार्ग का पथिक (हिन्दी)।

अंग्रेजी भाषा के ग्रन्थ - प्रेक्टिस ऑफ मैडिसन, मैडिसन बाईब्यूमौण्ट, मैन एण्ड वीमैन, एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, एन इण्डैक्स ऑफ ट्रीटमैण्ट ब्राई वैरियस राइटर्स, होमियोपैथिक मैटिरिया मेडिका, इण्डैक्स टु ट्रीटमैण्ट आदि।

उपरोक्त ब्रह्मण एवं अन्य ग्रन्थों के प्रमाण इस भाष्य में वेदार्थ-पुष्टि में अत्यन्त सहायक होने से दर्शाये गये हैं। उनसे वेदों के स्वत: प्रामाण्य पर कोई आँच नहीं आती। इसको आलंकारिक भाषा में स्पष्ट करते हुए भाष्यकार ने लिखा है- 'अत्र केचिद् ब्रूयुर्हन्त भो: ! श्रुतिवाक्यान्यपि प्रमाणान्तरै: पुष्टिमपेक्षन्ते तत्रेत्थमावेदयामो यदियमेव लोकस्य यात्रा कदाचिन्नौ शकटं वहति कदाच्छिकटो नावं वहति। प्रत्यक्षेण समर्थितेषु वैदिकवचनेषु प्रत्यक्षागोचरेष्वप्यत्र वर्णितेष्वध्यात्म तत्त्वेषु दृढतरम्प्रत्ययमादध्युरध्येतार: इत्येतदर्थमेवायमभ्यासो न तु श्रुतिसूर्यस्य प्रदीपेनालोकनोपहासे पक्षपातस्तन्मर्षणीयो ऽयं व्यक्तिक्रम: कालस्य महिमानं जानद्भिर्विद्वद्वरेण्यैरिति साञ्जलिबन्धमभ्यर्थयाम: ।' (अथर्वभाष्य १/९/२, पृ० १०७)

(घ) **अर्थों की अलौकिकता**-प्रकृत भाष्य में ब्राह्मणग्रन्थानुमोदित एवं यौगिक - प्रक्रिया से बोधगम्य और तर्कसंगत देवतानुसारी अर्थों की अलौकिकता क्या है ? अब इस विषय पर प्रकाश डालते हैं।

स्वामी समर्पणानन्द जी ने अथर्ववेदभाष्य में विविधार्थप्रक्रिया का विशेषरूप से प्रयोग किया है। क्योंकि आधुनिक विद्याओं, विज्ञानों और प्रकृति के तत्वों के प्रति उनकी अतीव निष्ठा थी, इसलिए उनके अर्थों में नवीनता है। ज्ञान का उद्देश्य अभ्युदय और नि:श्रेयस् दोनों की प्राप्ति है। इस कारण उनकी दृष्टि में जीवन का लक्ष्य केवल अध्यात्म ही नहीं, अधिभूत भी है। अत एव भाष्यकार ने प्रकृत वेद के प्रारम्भिक सूक्तों में ही आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक, अधिज्यौतिष और अधिराष्ट्रादि व्यावहारिक अनेक पक्षों में अर्थ दिया है। वे मन्त्रान्तर्गत किसी एक शब्द को उपलक्षण मानकर उपमा, रूपक और श्लेष अलंकारों के प्रयोग से मन्त्रों के कई अर्थ प्राय: सूचित कर देते हैं। 'आप:' देवता के मन्त्रों की वे जल, परमात्मा, ज्ञानधारा, स्त्री और प्रजा पाँच पक्षों में अर्थ-योजना करते हैं। मित्र का अर्थ प्राणवायु, जीवन का आधारभूत (आक्सीजन), जलों का उत्पादक, राजसभा में राष्ट्रोपयोगी नियम बनाने वाला राजपुरुष आदि करते

हैं। वरुण का अर्थ उदान अर्थात् हाइड्रोजन नामक वायु और पुलिस विभाग का अध्यक्ष (राज्याधिकारी) आदि करते हैं। सूर्य का अर्थ राजपुरुष, विद्वान्, वीर्य, दर्भोत्पादक और सब प्रजाओं का प्राण करते हैं। शर शब्द के ज्ञान, जल और औषधि; चन्द्र के चन्द्रमा, जलों का पिता, ललित कलाओं के प्रबन्ध करने में नियुक्त राजपुरुष; पर्जन्य के परमात्मा, मेघ, संन्यासी, कुलपति, तृप्तिकर्ता एवं सबका उत्पादक; पृथिवी के पत्नी, पृथिवी और उससे उपलक्षित प्रकृति; सोम के वीर्य और वैद्य; अग्नि के ब्राह्मण, भौतिक अग्नि, जाठराग्नि, विद्युत् रूप अग्नि, प्रजा, विद्वान् और प्राणशक्तिरूप अग्नि; बृहस्पति के सिर, वेदवेत्ता ब्राह्मण और पुरोहितों का अधिपति एवं हवि के मन्त्रजप, नहर खोदना और जलयन्त्र बनाना आदि के व्यापार, आह्वान, सत्कार, स्नेहयुक्त व्यवहार, अन्न, कर (टैक्स) आदि अर्थ करते हैं।

विविधार्थ प्रक्रियाओं में मुख्य शब्दों के अर्थ क्या लिये जायें इस विषय में भाष्यकार प्राय: वेदों और उनके व्याख्यानभूत ब्राह्मणग्रन्थों से ही प्रेरणा लेते हैं। जैसा कि वे लिखते है :-

१. 'आप:' से जल का वर्णन तो होगा ही परमात्मा का भी वर्णन हो जायेगा। क्योंकि वेद में ही 'ता आप: स प्रजापति:' (यजु. ३२/१) इन शब्दों में आप: का अर्थ प्रजापति परमात्मा किया गया हैं (पृ० ६६)

२. 'आप:' का अर्थ ब्राह्मणों में 'योषा वै आप:' (श. १/१/१/१८) स्त्री भी किया गया है। इसलिए मन्त्रों की व्याख्या स्त्री परक भी हो सकती है। (पृ० ६८)

भाष्यकार ने एक मन्त्र के अनेक अर्थो में किसी एक अर्थ को प्रधान मानकर अन्य आनुषंगिक अर्थो को भी दर्शाया है। इस अनेकार्थक शैली में भाष्यकार ने अध्यात्म से अधिदैवत परक तथा अधिभूत एवं अधिदैवत से अध्यात्म परक अर्थों की संगति लगायी है। इन तीनों प्रकार के अर्थों में ही अन्य प्रकार के अर्थ भी श्लेष अलंकार से समाहित हो जाते हैं। ये विविध अर्थ असंगत नहीं अपितु, इनमें औचित्य विद्यमान है।[१३] इसके साथ ही साथ इनमें विशेषण विशेष्य भावों की सार्थकता भी प्रदर्शित की गयी है।[१४] भाष्यकार ने देवतानुसारी प्रतिपाद्य मुख्यार्थ को मानते हुए कहीं-कहीं प्रत्यक्षकृत ऋचाओं का चेतनप्राणिपरक अर्थ भी सुन्दर रीति से घटाया है।[१५] मन्त्र-व्याख्या में एक वचनान्त क्रियाओं के साथ बहुवचनान्त क्रियाओं की संगति इस प्रकार लगायी गयी है कि एक भी अर्थ का उच्छेद (विघांत) नहीं होता।[१६]

प्रकृत वेद के भाष्यकार ब्राह्मण-साहित्य के अनन्य विद्वान् थे। ऐसा हम ऊपर लिख चुके हैं। समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र में भी उनका अद्भुत प्रवेश था। उन्होंने अथर्ववेद के सूक्तों और मन्त्रों का इसी दृष्टि से अध्ययन और विवेचन किया है। वेद

की ऋचायें मानव-जीवन की सामूहिकता को उदात्त करने के प्रयोजन से मनुष्य को दी गयीं, गम्भीर एवं व्यापक अध्ययन के अनन्तर उनकी ऐसी आस्था बन गई थी और इसी दृष्टि से स्वा. समर्पणानन्द जी के प्रकृत वेद भाष्य में एकरूपता और प्रवाह दिखाई देता है। उदाहरणार्थ, अधिराष्ट्रपरक व्यावहारिक अर्थों में मित्र, वरुण, चन्द्र और सूर्य के अर्थों में एकरूपता की संगति लगाते हुए उन्होंने लिखा है-

'मित्र को चाहिये कि वह दूषित शासन विधान के, इसी प्रकार वरुण दूषित पुरुष के, चन्द्र विषय वासना पैदा करने वाले संगीत कला आदि के, सूर्य, प्रमादादि दोषों से युक्त साहित्य के दोषों को इस प्रकार दूर करे, जिस प्रकार शरीर मूत्र को दूर करता है।' (अथर्व. १/३, पृ० ६०)

३. प्रकृत एवं अन्य भाष्यों में अन्तर–

उपर्युक्त वर्णन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्वा. समर्पणानन्दकृत यह अथर्वभाष्य वेदभाष्य परम्परा में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। अथर्ववेद के अन्य भाष्यकार हैं, जैसे - वैनियोगिक भाष्यकार सायणाचार्य, गिरधारीलाल शास्त्री (फर्रुखाबाद वाले), पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी और चतुर्वेदभाष्यकार पं. जयदेव शर्मा विद्यालंकार और दामोदर सातवलेकर आदि। इनमें से दा० सातवलेकर को छोड़कर अन्य सबका भाष्यकार ने अपने वेदभाष्य में नामोल्लेख किया है एवं स्थान-स्थान पर इनके सिद्धान्तों को भी उद्धृत किया है। एक दो स्थानों पर गिरधारी लाल शास्त्री के अर्थों को तटस्थभाव से स्वीकारते हुए भाष्यकार ने उनका स्मरण किया है। पं० गिरधारी लाल शास्त्री ने यद्यपि अथर्ववेद के प्रथम सूक्त का ही भाष्य किया पुनरपि, तद्भाष्य के प्रथममन्त्र के 'त्रिषप्ताः' पद के उत्कृष्ट अर्थ को तर्क और बुद्धि की कसौटी पर कस, अनन्य भाव से उचित ठहराते हुए सम्मानपूर्वक उनका स्मरण किया है। पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी के भाष्य से तो स्वा.समर्पणानन्द जी ने स्थान-स्थान पर सहायता ली है, विशेषतः व्याकरण-प्रक्रिया में, यह हम ऊपर दिखा चुके हैं। इनके अतिरिक्त वैनियोगिक भाष्यकार आचार्य सायण के अलीक, मिथ्या, तथ्यहीन एवं असंगत अर्थों का स्थान-स्थान पर युक्तियुक्त खण्डन कर उनके अस्पष्ट अर्थों की सही संगति लगाकर वेद के रहस्यमय तत्वों को भी उद्घाटित किया है। भाष्यकार ने यह इसलिए नहीं किया कि इससे वेदभाष्य-परम्परा में आचार्य सायण का महत्त्व कम हो जाये, बल्कि वह तो इनको विद्यार्णव, विनियोगादि सामग्रीसंग्रहीता, वैदिक वाङ्मय के महान् विद्वान् एवं पदवाक्यप्रमाणज्ञ आदि विशेषणों से विशेषित कर उचित सम्मान देते हैं एवं तत्कालीन परिस्थिति को ही इसका दोषी ठहराते हैं।[१९]

प्रत्येक युग की अपनी परिस्थिति भिन्न होती है। तत्कालीन वातावरण (परिवेश) से चाहे वह सामाजिक हो या राजनैतिक रचनाकार अछूता नहीं रहता। इसलिए जिस मध्ययुग में आचार्य सायण पैदा हुए वह बड़ा ही उथलपुथल वाला था और उस समय यज्ञों की प्रधानता थी। अतः इस कर्मकाण्ड प्रधान युग की छाप सायणभाष्य पर स्पष्ट दीखती है। क्योंकि उन्होंने अधियज्ञप्रक्रिया से वेदमन्त्रों के कर्मकाण्ड से सम्बन्धित विनियोगपरक अर्थ किये हैं। अपने से पूर्ववर्ती कृति का महत्व कम नहीं होता, क्योंकि भूत में ही वर्तमान विद्यमान होता है। किन्तु, भाष्यकार स्वामी समर्पणानन्द जी ने यहां खण्डन इसलिए किया है क्योंकि सायणाचार्य ने वेद के रहस्यमय तत्वों को न जानकर भूत-प्रेत-पिशाच-कृत्तिका आदि परक व्याख्या करके वेद के स्वच्छ, सुन्दर, गम्भीर अभिप्राय को विगाड़ दिया और इससे अथर्ववेद को वास्तविक वाणी न मिल पाई, उसकी निगूढ़ आत्मा का उन्मेष न हो पाया तथा उसके लाल (रत्न) छिपे के छिपे रह गये। साथ ही, इसके विपरीत भारतीय जनमानस में भूत-प्रेतादि की भ्रान्ति पैदा हो गयी और वे वेदों पर अश्रद्धा रखने लगे।

इस अश्रद्धा एवं अदिश्वास को दूर कर छिपे रत्नों को प्रकट करने का ही यह अभूतपूर्व प्रयास है, यह प्रयास इस भाष्य की मौलिकता है। चाहे अल्पकाय यह भाष्य अपूर्ण हो, फिर भी सदियों तक वेदानुयायियों का पथ-प्रदर्शन करता रहेगा।

सायण एवं मौद्गल्य (स्वा. समर्पणानन्द) कृत अथर्वभाष्यों के समीक्षात्मक अध्ययन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सायण-भाष्य में निम्न दोष हैं, जिनसे वह अस्वीकार्य है :-

१. विशेषण विशेष्य भावों में सार्थकता का अभाव।[२०]
२. पूर्वापर सूक्तों एवं मन्त्रों के अर्थों में असंगति और प्रवाह-भंग।
३. वेदों के शब्दों को यौगिक न मानकर मिथ्याविनियोग परक अर्थ करना।
४. साहचर्य का विरोध।[२१]
५. लोकप्रचलित मिथ्या धारणाओं एवं वेदों में भूत-प्रेत-पिशाच-कृत्तिका आदि का वर्णन है ऐसी गलत मान्यताओं के आधार पर अर्थ करना।[२२]
६. अर्थों में औचित्य का अभाव।
७. वाच्यार्थ की प्रधानता।

किन्तु, प्रकृत मौद्गल्यकृत अथर्वभाष्य इन दोषों से सर्वथा असम्पृक्त एवं इनसे विपरीत अनेक गुणों से युक्त है, जिस कारण यह सर्वथा ग्राह्य है। वे गुण इस प्रकार हैं :-

१. प्रकृत भाष्य में मिथ्याविनियोगों एवं तत्परक अर्थों के खण्डन पूर्वक पूर्वाचार्यों के उचित विनियोगों एवं अर्थों का मण्डन हुआ है।[२३]

२. इसमें पौराणिक कथाओं के मूल रहस्यों का उद्घाटन हुआ है।[२४]
३. व्यङ्ग्यार्थ की प्रधानता है।
४. अर्थों में औचित्य विद्यमान है।
५. पूर्वापर सूक्तों एवं मन्त्रों के अर्थों में संगति एवं प्रवाह है।
६. विशेषणविशेष्य भावों में सार्थकता है।
७. पदों के अर्थों में साहचर्य का विरोध नहीं है।
८. इसमें वेद के शब्दों को यौगिक मानकर एवं तत्प्रक्रिया एवं वैज्ञानिक-प्रक्रिया दोनों से भूत-प्रेत-पिशाच-कृतिका आदि परक अर्थों का खण्डन कर वेद के स्वच्छ, सुन्दर एवं गम्भीर अभिप्राय की पुन: स्थापना की गयी है।

इत्यादि उक्त इन कतिपय गुणों के कारण यह मौद्गल्यकृत अपूर्ण अथर्वभाष्य वेदभाष्य-परम्परा में अपनी पूर्णता का भान हमेशा कराता रहेगा, ऐसी आशा है।

पाद टिप्पणी

१. देखो, डा० भवानीलाल भारतीय, आर्यलेखक कोश, पृष्ठ ३२।

२. प्रस्तुत लेख में पृष्ठ संख्या उसी के अनुसार दी गयी है।

३. देखो, सायणाचार्यकृत अथर्वभाष्य की भूमिका में- 'ऐहिकामुष्मिक फलं चतुर्थं, एवं प्रकृत वेदभाष्य की पृ० सं० ६

४. अथर्ववेद के प्रथम मन्त्र के भाष्य में ही भाष्यकार ने लिखा है 'इस प्रकार इस मन्त्र (ये त्रिषप्ता:०) में अध्यात्मविद्या, भूतविद्या, वयोविद्या, लिंगविद्या, आयुर्वेदविद्या, संगीतविद्या, शब्दविद्या, चित्रकला और राजनीति का बल वाचस्पति मुझे देवें ऐसी प्रार्थना की गई है।' (पृ० १२)

५. द्र० अथर्व. काण्ड-१, अनुवाक-२ की भूमिका, पृ० ८३

६. द्र० अथर्व. १/११/३ का भाष्य, पृ० १२५

७. द्र० अथर्व. १/९ सू० का भाष्य

८. समाराध्यमानं विविधाम्फलपरम्परां प्रसूते। (अथर्वभा. १/६/२)

९. इस विषय में विशेष जानकारी के लिए देखो स्वामी समर्पणानन्द प्रणीत 'ऋग्वेदमण्डलमणिसूत्र' का प्राक्कथन।

१०. द्र० अथर्व० १/१/१ का भाष्य, पृ० ७

११. बृहद्देवता ८/१३६; वेङ्कटमाधव प्रणीत ऋग्वेदानुक्रमणी ५/१/५-७; एवं कात्यायनरचित ऋक्सर्वानुक्रमणी के अनुसार देवता मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय होता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार मन्त्र का जो-जो अर्थ होता है, वही उसका देवता है। (द्र. ऋ. भा. भू., प्रश्नोत्तर विषय)

१२. इस विषय में विशेष जानकारी के लिए द्र० सू० ३ के मं० २ और ३

१३. औचित्य विद्यमानता के उदाहरण स्वरूप मित्र और वरुण के अर्थों को लिया जा सकता है। जै० पृ० ४५ पर- वाणी का बन्धन वरुण अर्थात् पुलिस के हाथ में नहीं रहना चाहिए, वह मित्र अर्थात् राज्य नियम बनाकर अमृत का बन्धन करने वाले राजपुरुष के हाथ में रहना चाहिए अन्यथा प्रजाओं की अपने अभिप्राय के प्रकाशन की स्वतन्त्रता नष्ट हो जायेगी।

१४. देखो, अथर्व. १/३/८ का भाष्य, पृ० ६३-६४.

१५. देखो, अथर्व १/५ आपः सूक्त में मन्त्र सं. १ से ३ का भाष्य तथा एतत्सूक्त सम्बन्धी भाष्यकार का यह कथन-७ अब इस सूक्त में स्त्री अर्थ की प्रधानता है। क्योंकि यहां "स्थ" "दधातन" आदि मध्यमपुरुष की क्रियाओं का प्रयोग हुआ है। मध्य यमपुरुष का प्रयोग चेतन में ही अधिक सुन्दर रीति से घट सकता है। इसके साथ ही "जनयथ" क्रिया का प्रयोग भी स्त्रियों में ही अधिक सुन्दरता से घट सकता है। (पृ० ७४)

१६. (संश्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन विराधिषि, अथर्व १/१/४) के भाष्य में एकवचनान्त क्रिया के साथ बहुवचनान्त क्रिया के पढ़ने का औचित्य प्रदर्शित करते हुए भाष्यकार ने लिखा है- 'उस (वाचस्पति) की कृपा से मैं भी पूर्ववर्ती विद्वानों की तरह अपने ज्ञान को उपयुक्त पात्रों में दान कर सकूँ। जिससे केवल मैं ही नहीं हम सारे ही ज्ञान से संयुक्त हो सकें। 'विराधिषि' इस एकवचनान्त क्रिया के साथ 'संगमेमहि' इस बहुवचनान्त क्रिया के पढ़ने का यही भाव है।' (पृ० १८)

१७. देखो, अथर्व १/१/२ का भाष्य - 'मन्त्र के वाचस्पति और वसोष्पति पदों से एक और ध्वनि निकलती है। विद्याओं के दो रूप होते हैं। एक केवल ज्ञानरूप और दूसरा सीखे हुए ज्ञान की व्यावहारिक उपयोगिता। वाचस्पति शब्द केवल ज्ञानग्रहण की सूचना देता है। और वसोष्पति शब्द ज्ञान की जीवन यात्रा के लिए उपयोगी धनोपार्जन की शक्ति की सूचना देता है। (पृ० १४)

१८. अयमेव च वायु: समुद्रजलमादाय गच्छतीत्यगस्त्यस्य समुद्रशोषण कथा मूलमित्यनुसन्धेयम्। (अथर्व १/३/२ का भा०, पृ० ३६)

१९. 'सायणादयो ऽपि च सकल शास्त्रावगाहिनो वेदाभ्यास पराङ्मुखेऽस्मिन् घोरतमेकाले विनियोगादि सामग्री संग्रहीतार: पदवाक्यप्रमाणेषु त्रिष्वपि तन्त्रेष्वव्याहतगतयो मादृशानान्तु वन्दनीया एव यच्च कुत्रापि भ्रान्तमेतैर्विद्यादिग्गजैस्तत्र कारणमद्यत्वे ऽस्माभिरुपलभ्यमानानां प्राकृतिकतत्वान्वेषणसारपरिवृढानां तेषां तेषां विद्युदादिशास्त्राणां तस्मिन् काले ऽनुपलाभ एव।' (अथर्व भा० १/१/१, पृ० ६-७)

२०. द्र. अथर्वभा० १/३/८

२१. द्र. अथर्वभा० १/११/४

२२. द्र. अथर्वभा० १/१/१

२३. द्र. मौद्गल्यकृत अथर्वभा. १/११ की भूमिका

२४. द्र. मौद्गल्यकृत अथर्वभा. १/३/२

THE TEN GURUS AND VEDIC DHARMA (HINDUISM)

BY INDER DEV KHOSLA, ADVOCATE (RTD.)

Sakal Jagat Khalsa Panth Jage Dharam Hindu Sakal Bhand Bhage
(Guru Govind Singh) (Saviour of Hinduism)

DEFINATIONS :

a) **Guru** : It means a religious teacher, giving personal spiritual guidance to his disciples, leader.

b) **Hinduism** : The complex of beliefs and customs comprising the dominant religion of India.

c) (i) **Sikh** : A member of Hindu sect, founded in the 16th century that teaches monotheism. It also means disciple (Collions concise dictionary 1987).

(ii) The word Sikh means one of the north India monotheistic sect founded by Guru Nanak (1468-1528), later a military, confedracy, alliance-Sikhism (Hind disciple) Chambers dictionary.

(iii) The word Sikh has no root of its own, it is a distortion (अपभ्रंश) of the word (शिष्य) viz disciple. Accordingly all the ten gurus were gurus and not sikhs (शिष्य) whoseo-ever accepted discipleship or adopted gurumat (गुरुमत), after taking (अमृत) amrit, became (शिष्य) Shisya.

d) **Khalsa Panth** : A panth created for the purpose to destroy the evil doer and to eliminate sufferings (Sainapati).

Ten Gurus :

We often read in books, news papers and also otherwise read these words "Sikh gurus or gurus of Sikhs" which words litrary mean and convey the idea that these ten gurus were sikhs or they exclusively belong to sikhs. The use of such words is a misnomer and palpabaly deviation form accepted norms.

Guru and Shishya (शिष्य) are two different identities. Guru has a higher status than his (शिष्य) disciple. There is a relation of teacher and

taught, leader & follower. Originally it was a Khalsa panth or gurumat (Miri & piri) as is evident from old chronicales like gurumat nirnay, Gurumat Sudhakar, Janmsakhi (जन्म साखी) Bhaiwale etc. All the ten gurus, right from guru Nanak Dev to guru Gobind Singh, were born to Hindu parents, brought up as Hindus throughout their lives practiced Hinduism (Sanatan Dharma), preached Hinduism (gospels of Vedas), were all cremated according to Hindu rites and above all sacrificed their and their kins lives to save Hinduism from the hands of the tyrrant muslim rulers of India of their times, who wanted to convert hindus to muslim faith. They were the leaders and preachers of Hindus and Some of them were spiritual guides. In view of these observations how can one justify that they are or were sikh gurus. Why do Hindus of today condescend to such an assertion when they were their own kith & kin. Gurus are spiritual guides and belong to humanity as a whole, Guru Nanak's teachings are clear on the subject (इको नूर तो सारे उपजे कौन चंगे ते कौन मन्दे) This sectarian outlook reduces the grateness of gurus, more specially of guru Nanak who is considered as a jagat guru (जगत गुरु) Hindu Ka Guru Muslim ka Pir, His (वाणी) Vani is read and quoted everywhere. Guru Govind Singh was also an epoch making national leader of his times and to confine these gurus to a particular sect is to lower their dignity and stature. Guru Govind Singh himself declared in 1695 that he is national leader of a renowed Nation.

Hinduism, as defined above, is a complex of beliefs, and even if there may be some difference in philosophical throught that does not take away the gurus or their follows from the ambit of vast Hinduism. In the main stream of Hinduism, Monoism, Monotheism, Vedanties, Veshnvites, Shivits, Braham Samaj, Prarthna Samaj, Arya Samaj, Idol Worshiper, Non Ideal Worshiper, Kabir Panthis, Dadupanthis are all included, even the atheists are not out of it. Vedic dharma is so wide that there are six schools of throughts in it. Guru Nanak was against the prevalent Brahamanism, Orthodxy of his times. He rightly., like other preachers, condamned idolatory and false practices adopted by the Brahmanas to exploit the ignorant. I herein quote Dr. G.C. narang in this connection." Guru Nanak was the first reformer of modern times who

emancipated the Hindu mind completely from fetters of mythology (Transformation of Sikhism). During the British rule the Privy Council, which was the highest Court of Justice then, rightly adjudicated that sikhs are Hindus and this ruling still prevails.

When the tyrany of the muslim rulers of India reached its climax, against Hindus, Guru Gobind Rai (Singh) could not bear it any more, hence he stood up in revolt against them, like all other great men of all ages, to fight out the tyrant (Adharmi) and formed a force of his disciples (an army or group of people) whom he rightly baptized as khalsa (Pure), reliable people and laid down a code of conduct for them which was relevant in those times and was considered to be necessary. He called it a panth not any new religion. He did it under the command of God as he rightly said (आज्ञा भई अकाल की बगुरु चलाये पंथ) He writes in his vachitra Natak, the following words, while creating this panth. He himself admits that various other panths have been created by wisemen and accordingly he too, like them, is creating one. जो कोई होत भयो जग सिआना तिन तिन अपने पंथ चलाना। जिन जिन तनक सिधि को पायो। तिन तिन अपना राह चलायो जो प्रभु परम पुरुष उपजाए तिन तिन अपनो राह चलाए हम इस काज जगत में आए धर्म हेतु गुरुदेव पढ़ाए।

"There can be nothing more clear than the above words that his was a panth (way of life and not a religion) and that panth is like other panths of great men. Guru Gobind Singh was born to destroy Mughals" (Jagat Singh Sikh studies)- Guruji himself said (I took birth in order to spread faith, save sanity and expiscate all tyrrants) (गुरु गोविन्द ते उसदे खालसे) To establish a panth was a fashion in those days, like kabir panth, Dadu panth, Nirmal panth etc. and not the creation of a new religion. Raising an army, in revolt of a adharmi, of whatever kind, is a natural phenomenon, a dire necessity and every great man has been doing that. Rana partap, Shivaji of his time, did the same thing. Neta Subhash Chandra bose raised I.N.A. against the british rule, Mahatma Gandhi revolted in his own way and there is nothing new in such a concept. Gita is quite clear on the subject.

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।

Such great men work under the ordinance of God-They are rather

God sent and Guru Gobind was one of them and he fulfilled the wish of God. Khalsa panth was an army to combat Mughals, it was not merely a religious society but a band of soldiers & workers to fight injustice. This fact is abundantly clear from he following para quoted by proof : Krishan Singh author of Sikh Lehr. "The gurus did not dabble in politics casually or accidently, as some historians may like to put in, they regarded it their duty to fight not only injustice but political oppresion as well" Guru Hargobind founded the Akal Takkat, a seat of temporal authority and set-up two flags flutterneg before it. distincly signifying one as religious and the other as of temporal authority. Such steps tenta-mounted to the declaration of a parallel government and marked a clear change in the character of the movement (Jagat Singh in his journal of Sikh studies), It was a movement. (लहर) The advice of the ninth guru to the rebels of Aurangjeb, was a calculated step to invite confrontation with the Delhi Emperor (ibid) These facts clearly establish that panth was more or less a socio-political organization based on dharma righteousness and not a separate religion. Although I am no scholar of history, yet I have not come across any statement of any of the guru that he is not a hindu.

We now dilate, in brief, some of the basic tenets of Hinduism (Vadic Dharma and those preached by the great gurus) to prove that there is absolutely no difference in main beliefs. The main principles are (1) God (2) soul (3) nature (4) theory of karma & reincarnation of soul (5) Faith in veda which is the source of dharma) and voice of God, and (6) Sacredness of cow, Historians & other writers, who were/are ignorant of the contents of veda, lay much stress on the fact that Guru Nanak founded monotheism but the real fact is that he merely revived it, which is already there in vedas as is clear from the following mantras. As stated Dr. G.C. Narang that Guru nanak was the first reformer in this respect and not the propounder of a new religion.

(a) God : Hindu Version : God is one and only one called by various names, in respect of his main qualities, he possessess, He is perfect in himself and his main name is OM.

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो। य एकं देवमेकवृतं वेद। स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न। य एतं देवमेकवृत वेद। (Ath. Veda)

God is called neither the second, nor the third not yet fourth. He takes care of all those who breath or do not breath) इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः सः सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहु (Rig. 1,164,46) He (OM) is one but the wise men call him by various names like Indra, Mitra, Varuna. पूर्णमदः पूर्णमिदं........... पूर्णमेवावशिष्यते (Upnishada) He is perfect in Himself, if everything a taken out of Him. He still remains perfect and full.

Guru Version :

सिरमउ जासु बिस्भार एकै नाम जपद

अनन्त अनेके (Sukhmani Saheb)

एक एकंकार प्रभु (Japji Saheb)

ओ सृतिनाम (Japji Saheb)

अनिक भांति होई पसरिया नानक एकंकार

तव सर्वनाम कथेवन करम नाम वर्णत सुमति (Raj mehela 5,14)

सर्वऐर विखै रमयो जह चक्रन्हि नहीं चित्र (Akal Stuti Chand 182)

Soul (H) इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःख ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्।

(Naya) Souls are not born, but are eternal they charge bodies according to their deeds is various births.

सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात् पुनर्णवः

अहोरात्रे प्रजायेते, अन्योऽन्यस्य रूपयोः (Ath. 10-8-23)

Learned ones call soul as eternnal though they appear new. Birth and deaths are like day and night, occur in the form which one of the other of them does wear.

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे (Gita 2.20)

Guru Version :

उडिया हसं दसाई राह आया गया (Raj majh 1,1)

मुहिया नाऊ

न जीउ मरे न डबै तरे (Raj Gauri 1-2)

मरणहार हार एह जिअरा नाही (Raj Gauri 5-112)

कहु नानक इह जीउ कारण बंध होई (Raj Bharce)

इहजेव बहुते जन्म भ्रमिआया ता सतगुर शब्द सुण्इप्रा (Asadiwar)

Nature (H) : Nature is a compound a five gross elements viz (1) Fire (2) Water (3) Akash (4) Air (5) Earth and three gunas (Sat, Rajas & Tamsa)

(5)(g) पंच तंत्र को तन रचयो, जहते उपजे नानका तह में लीन हो जान
पवन पानी अग्नी पत्ताल तिसु विचि धरती
थपी रखी धरमसाला (Gapie Sahab)
पवन गुरु पानी पिता माता धरति महतु (Gapie)
दिवसु राति दुई दाई दाहआ खेले सगल जगत

Veda & Cowl (H) वेदेन वै देवा असुराणां विन्ते वेघ धमविदन्त तद्वेदस्य वेदत्वम्

Veda is the fountain head or repository of all knowledge and wisdom, an outline of the whole world Vedas contain all the wisdom that God in His Divine dispensation gave to the forefathers of humanity. (g) same of ignorant & prejudice minded persons say that guru Nanak did not believe in vedas which fact in totally incorrect as in evident from his following words.

सामवेद, ॠग जजुर अथर्व ब्रहम मुख भाईया है त्रैगुण (Maru Mehla)
ओकर वेद निरमाए (Ram Kali) God created Vedas चउथ उपाए चारे वेदा खाणी साजे चारे वाणी भेदा चचे चार वेद जिन साजे चारे खाणी चार जुगा
खाणी चार जुगा (Rag Asa)
असंख पंथ मुखि वेद पाठ (Japji)
मति वेद (Veda is knowledge) Japji
चारे वेद ब्रह्मा कंउ दिये पठ पठ करे
बीचारी चारे वेद ब्रह्म नो फुरमाई (Rag Asa)
धर्मविद मर्यादा जग को उलाऊ
गुउ घात का दोष जग से मिटाऊ (Rag Asa)

This quotation also confirms the belief that much importance to the protection of cow is given in vedas and gurus confirm this fact.

Theory of Karma rebirth (H) : असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेही भोगम्। ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृकया नः स्वस्ति (Reg. 10.59-6)

O God ! bestower of all sorts of pleasures be kind to give us efficient working eyes and other senses in our next birth as at present.

पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौदेवी पुनरन्तरिक्षम्।

पुनर्नः सोमस्तत्वं ददातु पुनः पूषा पथ्यां या स्वस्तिः ।। (R/10/59-7)

Oh omnipotent God ! be kind to bestow on us in our repeated birth all the senses in perfect order.

(g) लख चुरासी जोनि भ्रम प्राईयो (Rag Gauri)
इह जीव बहुत जन्म भ्रमिआ (Asadivar)
अनिक जन्म बहुजोनिं भ्रमआ बहुर बहुर दु:ख पाया
इह जीव बुह्रे जन्म भ्रमिआता सतगुरु शब्द सुणइआ

6. Misc : Rites & Ceremonies (H) Vedic dharma lays much stress of performance of Yajna & Agnihotra (g) Guru Gobind Singh. Once performed a special Yajna, wherein ghee was poured continuously till the end of the ceremony, and he declared as under stating that it is our dharma.

इह तो धर्म हमारा सार
करते रहे नृप मुनि अवतार
सो तो हम भी करना चाहें
जिसते सभ सृश्टि सुख पेहै
आप हवन के नफे जो गाए
माई अश्वयमेव सब भाए
पर उपकार जगत पर भारी होई आपका जग सुख कारी

(ii) Yojyopavit (H) It is an important Ceremoney is hindu Dharma.

(G) The following is the discription of Shri Guru Gobind Singh i.e. when Yanyopavit (जंजू) Ceremony was performed पीत पुनीत उपरना धोती जोती रवि नव छबि छाजे पीत जनेऊ मनो बहन ससि वै बिजरी विनुरी भ्राजे History suports that Guru Sahiban wore their Yajyopavit after proper Ceremoney (Dixsha). From the life history of Guru Tejbahadur we find these words तिलक जंजू रखा ताका कीनो बाड़ी कलू महि साका

In view of the above what more Cogent reasion is needed to prove that Khalsa Panth was a part & parcel of Hindu Dharma. All the principals are the same. Khalsa panth was a political organization as is clear from the two slogans which are still sung by shishyas.

राज करेगा खालसा आकी रहे न को

Conclusion : Upto the end of 18th Century this Organization was called khalsa brotherhood & the word Bhai' used to be prefixed before most of the names. Even today important persons or leaders are called Bhai as Bhai Rajnit Singh. Maharaja Ranjit Singh upto 1893) named his kingdom as 'Sarkar Khalsa" not sikh Sarkar.

The seed of Separation from the main stream of Hinduism, was sown by one Bhai Kahan Singh of Nabha who wrote a book with a caption "Ham Hindu Nahi" This book got popularity within the Circles of keshdhari Sishyas and they began to control & manage all the institutions of Khalsa panth, to the exclusion of non kesh Dharis. Upto this time both bhais & Pandits used to read guru garanth Sahib in gurudwaras, and took part in the management of properties, and performed ceremonies. The bug of jealousy strung and the spirit of domination & control of institutions played their part. Thus all the institutions began to be controlled by keshdharis who were in majority. By and by this spirit of Separatism, gathered strength which found more help from then government viz British Raj whose patent policy was to divide and rule. They gave fillip to this separatism and thus Sikhism became a popular word.

If the present Sikhism, is a separate religion, than the original khalsapanth then it is a different question, else all the true followers & disciples of Gurusahiban are all Hindus or ought to be Hindus as GuruSahiban themselves were, irrespective of the fact they wear five kakas, or are adopting a different way of life from others of their common ancestors.

APPENDIX

The prime fact about religious is that they are part of social order they are founded by the disciples and followers of saints and prophets, and not by the saints and prophets in whose name they are spread and developed. (Hindustan Times Sept. 1997)

VANPRASTH AWARENESS

YASHWANT MUNI*

One-Day Seminar on Vanprasth Awareness Generation and its significance in Modern context was held on 11-1-1998 by the August institution Saptrishi (Vanprasth Ashram' Visakhapatanam 530016 Andhra Pradesh). I spoke on it as follows.

Our rishis divided the human life of 100 years equally in four periods (Ashrams) named as Brahmcharya, Grahsth, Vanprastha and Sanyas. In Brahmcharya, one was devoted to acquisition of all round knowledge and development of health and mind. This prepared one for Grahsth, that is, family and married life where one was required to earn one's livelihood and to help the needy. When exhausted at 50, he was required to switch over all his worldly belongings to the youngsters. This handing over was known as "Pagadri System" in Punjab and thereafter a walk over to the natural habitat, called Van (jungle). Hence, this system was named as Vanprastha Ashram. In Vanprastha Ashram, man was required to devote himself for God, self realization and service of humanity. He would do Tapa and prepare for the next fourth Ashram called Sanyas Ashram after 75 Years of age. At this stage with the concentration of mind, he would seek union with Almighty and attain Moksha, the final aim of mankind. The state must support and fulfil the needs of Vanprasthis and Sanyasis. They would devote themselves to return the debt of the society and that of God.

Let me throw light on the functioning of the Vanprastha Ashram. It is the most important period of life. The Vanprasthis can make the world worth living. They can work as counsellors and teach the youngesters honorarily on the basis of knowledge and experiences attained by them in the 1st and 2nd quarter of life. This would save millions of rupees. This system could even now be adopted and I am sure that this August Saptarishi (Vanaprastha) Ashram will lead in this noble cause.

Another aspect of Vanprasth is to send representatives of

their own in the parliament who may be men of intellect and honesty. They can aspire even to become Rashtrapati to lead the country to be properly governed. I wish you to read a legend written on the front wall of the Parliament House, above the seat of The Speaker :

"न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः न ते वृद्धा
:
ये न वदन्ति धर्मम्..............................."

(An assembly is incomplete without the old, And without the old, the Dharma is not observed.)

The western civilization and the rapid urbanization have broken our ancient joint family system. Our younger generation has neither the affection for the old nor the willingness to accommodate them. As such, the revival of Vanprastha Ashram system has become the need of the day, so that the old people may spend the remaining part of their life in a dignified manner.

In out culture, it was essential to repay the debts of the parents, teachers and God. But, today that idea is no more taught to our present generation. So, they do not care to repay their parents as in the past. This factor too adds to the necessity and importance of establishing Vanprasth Ashrams in the country.

The westernized way of life has affected the health of the old people very badly. You very well know that health is wealth especially in old age. So there is an utmost need of Vanprastha Ashram for their happy life with a sound mind in a sound body. A healthy man can do Tapa, Sadhana and service to the society. In this regard, only Vanprastha can play the best role by providing the old some light manual work, light games, yoga exercises and libraries. These activities will keep them busy and also satisfy their hobbies too.

Last but not the least is the plight of the old man in our country fast adopting the western culture. Today, a young man when married separates himself from his parents leaving them to

live to a solitary life and feed themselves frugally and even by begging. The plight of the old generation is pitiable. where should they go and how could they live ? Of course, the States are helping the old but this help is insufficient. The old are considered as burden on the nation. I am therefore of the firm opinion that only voluntary organisations like Vanprastha Ashrams can make the lives of the old people worth living. Thus, if there could be a Vanprastha Ashram in every district or sub-division, like a home for senior citizens in the advanced countries where old people would find solace, living place and befitting company to pass their lives. Their blessings will elevate the organizers to the higher plane. Thus, the Vanprastha Ashram of these days will play the multiple role, that is, place for Sadhana, imparting knowledge to the society, self realization and preparation for Sanyas Ashram. Finally it will give health and shelter to the aged.

Our Vanprastha Ashram at Haridwar has been taking care of all these aspects for the last 68 years and as an elder brother in this field, I bless this new Institution for the noble cause.

182, Arya Vanprastha Ashram,
Jwalapur, Hardwar-249407

MICROBIOLOGICAL ASPECTS OF KRISHNAL [Abrus precatorius] PLANT IN VEDA AND MODERN SCIENCE

MRS. SHALINI*

The antimicrobial properties of green plants have been recognized since the prehistoric times. The Vedas, pharmacopes of ancient Indian and Chinese system of medicines are largely based on green plants. Unfortunately the use of plant extract or their constituents for controlling disease did not receive much attention, Although the scientific recognition of antimicrobial potentialities of higher plants has occurred during the past few decades.

However, higher plants have been recognized to release volatile substance which keep the air remarkably free from pathogenic micro organism. Likely, we get same description in Vedas. Lot of plants have tremendous activity and medicinal value.

A plant "KRISHNAL" described in Yajurveda Samhita. The fruit of the climber "Gunja" is also described [1]. In Dhanvantri Nighantu KRISHNAL is mentioned as dry, warm and its juice is pungent. It cure from poison, worm and other disease also [2].

In the Atharva Veda Bhashya Sahan mentioned "Gunja" as a medium to have long life and also to have a victory [3]. In addition to "White Gunja" plant is also referred in his work. It has also find place in Taitriya Brahman and in Sutra Sahtya [4].

KRISHNAL is also mentioned as a synonyms of Gunja in Bhavprakash Nighantu by Chunekas. It has two kinds, one is Shweta (white) and other is KRISHNAL (black). Both the forms have been described as a medium for vat, pitta disorder, fever, throat disease, illusion, asthematic, thirst, madness and in eye diseases. It cures, vrishya, varna and kandu (wounds). It is also used for the treatment of worm and leprosy. Chunekar accept it as " Abrus precatorius" Linn., a member of

* Gurukula Kangri, Haridwar.

leguminoseae family [5].

Dhanvantri described it as a subkind of poison [6]. While Suryakanit accepted it as one of the form of the measurement which is generally called as "Ratti" [7]. It is also mentioned as "HIRANYA KRISHNAL" in Taitiriya Brahman [8]. In Vedic index it described as seeds of "Abrus precatorius" plant [9]. In the indigenous system of medicine, the seed extract use externally in the treatment of ulcer and skin infection.

According to latest classification of plants, botanical name of "KRISHNAL" is "Abrus precatorius" which is a leguminous plant. While common names are Crab's Eye, Indian liquorice, Jequirity.

The roots and leaves are used medicinally due to the presence of Glyrrhizin, which is principal constituent of liquorice and used in coughs and catarrhal infection. The roots are used in preparations prescribed for gonaorrhoea, Jaundice and heamoglobinuric bile and possesses diuretic tonic and emetic properties [10]. The alcoholic extract also showed antiestrogenic activities [11,12].

A decoction of leaves is widely used for cough, cold and colic. The leaves are also considered useful in biliousness, leucoderma, itching and in other skin disease [13,14].

The seeds are poisonous due to the presence of Abrin. The bruished seeds have been used for the poisoning cattle, homocidal purposes and abortifacient. Abrin is powerful irritant Alkaloid. It has been studies intensively for its antitumor activities [15,16]. Powdered seeds are said to disturb the uterine function and prevent conception in women. Also used to bring about abortion and employed by malygerers in the army [17].

Petroleum ether extracts of seeds showed antifertility activity, aqueous extract adversely influenced pregnancy and development of foetus in mice. Seed oil produce post coital antifertility activity and oral contraceptive in mice and rats [18,19]. In Ayurvedic medicine, the seed oil is to promote the growth of human hair [20].

REFERENCES

1. तै.सं. - 2/3/2/2,3; मै.सं. - 2/2/2; काठक सं. - 11/4
2. धन्व. नि0 - गुरुप्रसाद शर्मा, पृ. 125-126
3. अर्थव. - 1/35 सायण भाष्य तथा 1/9 सायण
4. तै. ब्रा. - 1/3/6/7; हि.श्रौ. - 3/8/20; 13/1/62; 22/4/1,2,3; बौ.श्रौ. - 11/1; 13/23,24; कौ.सू. - 11/19; 52/20
5. भा.प्र.नि. - के.सी. चुनेकर, पृ. 354, 356
6. धन्व. नि. - डा. गुरुप्रसाद शर्मा, पृ. 280
7. वैदिक कोश - सूर्यकान्त,. पृ. 108
8. हिरण्य कृष्णल - तै. ब्रा. - 1/3/6/7
9. वैदिक इन्डैक्स - अनु. राय, प्रथम भाग,, पृ. 205
10. Shah, C.S. and Bhatt; J.G. (1973). Abrus precatorius as a substitute for liquorice, Deptt. of pharmaeognosy L.M. College of Pharmacy, Ahmedabad-9, 35, 102.
11. Burkill, I.H. (1935). A Dictionary of the Economic products of Malya peninsula, (2 vls.) I, 9.
12. Kirtikar, K.R. and Basu, B.D. (1935) Indian medicinal plants and revived by Blatter J.F. claus and Bhasker K.S. Clalil Mohan Basu, Allahabad, 2nd edn, 4 vols. with C-1033 plates.
13. Dastur, J.F. (1951) Medicinal plants of India and Pakistan. A concise work describing plants used for Drugs and Remedies according into Ayurveda, Unani, Tibbi Systems (D.B> Taraporewala sons and company Ltd., Bombay).
14. Chopra, R.N., Chopra, I.C., Handa K.L. and Kapur L.D. (1958). Chopra's In digenous drugs of India, (U.N. Deer and sons private Ltd., Calcutta).
15. Desai, V.B. and Sirsi, M. (1966) chemical and pharmacological investigation on Abrus precatorius Linn., N.O. leguminoseae, (Pharmacology laboratory, Indian Journal Pharmacy, 28, 164.
16. Shabnam, S.R. (1964) Medicinal plant of Chamba, Indian Forester, 90, 50.
17. Minchin, A.(1935) A little red seed : The Malingerer's Friend, Indian Journal Forestry, 61,776.
18. Nagrajun, S; Jain, H.C and Aulakh, G.S. (1982). Indegenous plants used in Fertility control, cultivation and utilization of Medicinal plant, 560.
19. Desai, V.B. and Rupawala, E.N. (1996) Antifertility activity of the steroidal oil derived from the seed of Abrus precatorius Linn. on Rats and Mice, Indian Journal of Pharmacy, 28,344.
20. Eckey, E.W. (1954). Vegetable fats and oils (Reinhold Pub. Corp. New York) pp.-503

ADULT EDUCATION : Its Need in India

DR. SATENDRA KUMAR*

Adult Education is the key which unlocks the door to modernization. It is said that adult education shares the same board aims and objectives with education. Nevertheless, the concept of adult education is like a chameleon; its appearance changing with every observer from country to country to country and even from region to region within the same country. Adult Education is by no means a settled exercise since it is of recent origin. It is relatively young discipline. The adult education departments were started into the University system as a part of Government policy in 1978. They were initially established as an extension activity to contribute towards national endeavor to eradicate illiteracy. In essence, adult education is so closely related to the social, political and cultural conditions of each country that no uniform or precise definition can be arrived at. The terms non-formal education, continuing education, complementary education explain different forms and approaches of adult education.

By adult education we do not mean literacy education alone. Adult education is more than literacy or remedial education to 'fill the gap'. It is something people need and want so long as they are alive and regardless of the amount of their previous education. It must therefore, be an integral part of any modern country's educational system.

In normal conditions programmes of adult education presume universal literacy. In the Indian context 60% of the people are still unable to read and write and naturally, 'liquidation of illiteracy' becomes a matter of immediate national concern. The scope of adult education is as wide as life itself. Its requirements are somewhat different from those of the normal school system. It depends upon the support it receives from several agencies, particularly the universities and the public institutions and libraries. The effectiveness of the programmes of adult education depends upon a competent administrative machinery.

In Gandhiji's words, " Mass illiteracy is India's sin and shame; the

* Jamalpur Kalan, Jwalapur, Haridwar

literacy campaign must not begin and end with mere knowledge of the alphabets. It must go hand in hand with the spread of useful knowledge" Again he says, " Literacy is not the end of education, not even the beginning..... it is only with means whereby men and women can be educated."

As this country is eclipsed by corruption and the corresponding offences, similarly the society has been punctured by communalism, casteism, regionalism and linguistic differences. The unity and integrity of the country is in danger. This is a result of mental immaturity. Meanmindedness results in intolerance, while mental immaturity results in meanmindedness. Education must broaden the intellect and the mind.

Knowledge is like fire. Fire can be used for cooking, but also for burning a house. Hence, spread of knowledge does not culminate in social progress. Human and social values must be inculcated alongwith the spread of knowledge. Just as the destructive use of knowledge is a blot to education, similarly the intellectual and mental slavery of the educated, their orthodox nature, blind beliefs and otherwise dependence are equally despising. These prove the education to be useless and are its insult. The purpose of education is to teach a man to think independently, but mental slavery proves that the purpose has been vitiated. What the society needs is a thinker, a leader and a foreseer and not slaves carrying a load of books or prating crammers. It's necessary for the progress of the society that education produces foreseeing thinkers. Mental and intellectual slavery takes back the society by many years. So the purpose of education should be to widened the horizon of mind and intellect.

It is useless to quote that adult education is a matter of life and death which can be ignored or postponed only at grave peril. If someone were to prepare a literacy map of the world and colour illiterate areas of the earth black, India will, to our shape, look like a dark continent. This is the state of things which makes us feel both ashamed and indignant ashamed that a country which prides itself one of the oldest cultural traditions in the world, should have come to this pass, indignant because we've been content to put up with this blot on our reputation for so long.

The National Literacy Mission 1988 has stressed the importance of literacy in these words, " Literacy is an indispensable component of human resource and development. It is an essential tool for communication and learning for acquiring and sharing of knowledge and information, a precondition for an individual's evaluation and growth and for national development". I can summarize the following reasons for the need of adult education in India.

1. Adult education is a powerful auxiliary and an essential incentive to primary education. No programme of compulsory education for children can succeed without the active support and co-operation of adults.

2. India has chosen the path of democracy and the right of vote has been extended to all adults over 18. But the success of democracy rests on the quality of the citizens of the state. It is really very difficult to achieve anything remarkable by way of progress-social, economic or political unless we give full attention to the education of adults.

3. The concept of adult education has brought a new hope for adults who could not get opportunity of receiving education during their school years. Through various programmes and techniques of social education, the illiterate farmers in the fields, labourers in the factories and other can be made acquainted with the latest developments taking place in their own fields and thus they can be made happier and useful citizens who would understand their rights and duties given to them in the constitution of free India.

4. The greatest good that adult education programmes can do to our adults in various fields is the training in co-operative living. Adult education can inculcate the spirit of co-operations which, at present, is lacking among our masses. It will fight against groupism, casteism, and institutionalism.

Needless to say, the problem of providing literacy to our adults is dimensionally a daunting one. The past programme had suffered due to excessive dependence on administrative structure and lack of involvement of the mass organization, media and the educational institutions. Adult education, being considered and intergral part of rural development, must start with the needs of the millions of individuals who consti-

tute the communities of the rural people and must seek to involve all those living in rural areas, rural workers, peasants, marginal frames, artistions and self-employed women as will as men, in the process of development.

Problems related to adult education are multi-dimensional and multi-disciplinary. Research studies undertaken by educators, economist, sociologists, anthropologists, management specialists, would provide useful insight into problems relating to adult education.

The present article is not only an attempt to provoke new thought and to strengthen existing knowledge, it is an impassioned call to all of us to accept our own responsibility and direct duty, to walk back down the ladder which we have climbed, and build in all the missing rungs to helpless fortunate adults to the freedom of status, carrier, and personal fulfillment to which only the fullest educational opportunity is the key.

To sum up, adult education is thus the foundation on which alone free India can build up a welfare state which will recognize the claim of both individual freedom and social security. Our concern for 100% literacy is not an end itself but as a means of bringing about the cultural and socio-economic transformations of our people.

References

1. **Education and Social Change :** A convocation address by Mr. Justice, P.B. Sawant, Chairman, P.C.I.
2. **Educational Status of Rural Girls,** Ed. Kalawti (New Delhi Discovery Publishing House, 1994)
3. **Education for Rural Reconstruction,** Ed. Neelam Sinha (New Delhi, Commonwealth Publishers)
4. **Social Foundation of Education,** Ed. T. Herold (New York : John Wiley & Sons, 1971), pp. 151-170.
5. **Women & Education,** Ed. B.M. Sharma (New Delhi : Commonwealth Publishers).

INCIDENCE OF POVERTY IN INDIA - ITS ESTIMATION AND RELATED DATA GAPS*

A.C. KULSHRESHTHA, GULAB SINGH AND RAMESH KOLLI
CENTRAL STATISTICAL ORGANISATION, NEW DELHI

INTRODUCTION

Removal of poverty and improvement in the standard of living of the masses have remained the basic objectives of the Indian Planning. These are being achieved through planned economic growth and target oriented poverty alleviation programmes for the poor. To help formulate effective schemes for poverty alleviation, measurement of poverty is essential. Though there is difference of opinion among the experts on the methodology to be adopted for its measurement, the importance of quantification of poverty is well recognised. This paper describes the official methodology used by Planning Commission for estimation of proportion and number of poor and the available data source used for this purpose. Data gaps relating to estimation of incidence of poverty have also been enumerated.

2. OFFICIAL METHODOLOGY FOR ESTIMATION OF PROPORTION AND NUMBER OF POOR

The question of defining poverty line was first mooted by the Indian Labour Conference in 1957. A definition of poverty in the Indian Context, was attempted for the first time by a distinguished Working Group set up by the Planning Commission, Government of India in July, 1962. After taking into account the recommendations of the nutrition Advisory Committee of the Indian Council of Medical Research (ICMR) in 1958, regarding the balanced diet, the Working Group came to the view that the national minimum for each household of 5 persons (4 adult consumption units) should not be less than Rs. 100 per month at 1960-61 prices or Rs. 20 per capita. It further suggested that for urban areas this figures should be raised to Rs. 125 per month per household or Rs. 25

per capita to cover the higher prices of the physical volume of commodities on which the national minimum is calculated. By implication, this meant that the corresponding amount in the rural areas would work out to Rs. 18.90.

Dandekar and Rath (1971) used an average calorie norm of 2250 calories per capita per day for both rural and urban areas as a criterion to define the poverty line so as to segregate the poor from non-poor. On the basis of National Sample Survey (NSS) data on consumption expendture, the study revealed that an average monthly per capita expenditure of Rs. 14.20 in the rural areas and an average monthly per capita expenditure of Rs, 22.60 in the urban areas both at 1960-61 prices would suffice to meet the requisite calorie requirements. Prof. Sukhatme argued that average calorie requirement does not represent the minimum below which a person can be treated as undernourished. Bardhan (1971), Rudra (1974), Minhas (1969) and others forwarded different estimates of incidence of poverty at regional level following mainly the national norms.

Planning Commission constituted a 'Task Force on Projections of Minimum Needs and Effective Consumption Demand' in 1979 to recommend a poverty line. The methodology as formulated by the 'Task Force' has since then, been used in estimating the incidence of poverty in Planning commission.

The poverty line has been defined by the 'Task Force' (1979) as that expenditure level, which meet the average per capita, per day calories intake of 2400 calorie for rural areas and 2100 calories for urban areas. The monetary equivalent of these norms (i.e. poverty lines) have been worked out using the 28th round (1973-74) NSS data relating to private consumption both in quantitative and value terms. Using approapriate conversion factors, the calorie content of consumption baskets corresponding to various expenditure classes have been worked out. Applying inverse linear interpolation methods to the data on average per capita monthly

expenditure and the associated calorie content of food items in the class, separately for rural and urban areas, it has been estimated that, on an average Rs. 49.09 per capita per month satisfied a calories requirement of 2400 kilo calories per capita per day in rural areas and Rs. 56.64 per capita per month satisfied a calories requirement of 2100 kilo calories per capita per day in urban areas both at 1973-74 prices. The poverty line so estimated implies that having this amount, on an average, an individual will distribute his expenditure between food and non-food items in such a way that the calorie content of his food consumption satisfies the desired calories norm. Thus, the concept of poverty line used here is partly normative and partly behavioural.

The poverty cut off points, as estimated above are updated over time by using relevant price inflators weighted by approapriate consumption basket, to take care of the changes in price level. Using the updated poverty line and the data on the size distribution of population by expenditure classes from the household consumption survey conducted by National Sample Survey Organisation (NSSO), for the reference year, the number and proportion of persons below the poverty line are estimated. The poverty estimates are made seperately for rural and urban areas and at national and State levels, using appropriate consumption distributions. In estimating the State level incidence of poverty, the national calorie norm and the corresponging all India poverty line have been applied on the State specific household consumption distribution, seperately for rural and urban areas.

It has been observed that the national total of household consumption expenditure as estimated on the basis of the result of NSS household consumption survey is different from the national private final consumption expenditure estimated in national Accounts Statistics (NAS). To make the estimates of total private consumption expenditure consistent from both the sources the expenditure levels reported by the NSS is raised by a factor of proportion, capturing the differences between the total private

consumption as obtained from NSS and the total as estimated by NAS. This factor is applied uniformly to all expenditure classes. The incidence of poverty is then estimated with the adjusted distribution of consumption expenditure. The estimates of poverty based on the aforesaid procedure are presented below :

TABLE : ESTIMATES OF POVERTY (ALL INDIA)

		1972-73	1977-78	1983-84	1987-88
Poverty line (Rs.)	Rural	41.0	60.0	101.8	131.8
(at current prices)	Urban	47.0	69.9	117.5	152.1
Proportion of	Rural	54.1	51.2	40.4	33.4
People below	Urban	41.2	38.2	28.1	20.1
Poverty line	Combined	51.5	48.3	37.4	29.9

Source : Planning Commission Government of India.

There has been significant decline in the incidence of poverty over years. The decline in the incidence of poverty has been achieved due to combined effect of faster economic growth and poverty alleviation programmes.

The procedure for estimation of poverty has been criticised and its limitations have been pointed out from a number of angles. Broadly they fall in two categories, the first related to the concept itself and the second arising from the data and methodologies used in India for estimating the poverty line. Planning Commission, Government of India constituted in September, 1989 an Expert Group to consider methodological and conceptual aspects of estimation of proportion and number of poor in India. The Expert Group has since submitted its report in July, 1993 and its recommendations are under the consideration of the Government of India.

3. POVERTY AND AGRICULTURE

Fortunes of rural poor in India are intrinsically liked with the

Agriculture sector as it contributes about 30 per cent to the GDP and provides sustenance to more than two thirds of the people. Agriculture impacts on the poor in more ways than one. A higher agricultural output leads to lower food prices as well as improve food availability of poor. It will not only generate employment opportunities in the agriculture sector but would also affect the growth in the non-agricultural sector, though linkage effects thereby creating income earning oppotunities. Agricultural growth on the whole will boost the overall economic develoment. However, if a gricultural growth involves a shift from labour intensive crops and technologies to labour saving ones this might as well work to the detriment of the rural poor rather than beneficial as wages from agricultural employment constrtute a major component of the incomes of the poor. Evidences from India, however, suggest that on the whole the green revolution resulted in the net increase of labour use and real wage rates, Dantwala (1985).

4. DATA SOURCE FOR ESTIMATING INCIDENCE OF POVERTY

The data on income distribution by size classes is required for estimation of incidence of poverty. The time series data on income distribution by size classes is, however, not available in India, in the absence of which the country wide data on consumer expenditure, available through NSS consumer expenditure surveys, has become the only source of data for the poverty related studies.

NSSO has conducted household consumer expenditure surveys since its first round started in October, 1950 through the 28th round (1973-74). After 26th round onwards. It decided to conduct the survey once in 5 years only starting from 27th round onwards, So far, four quinquennial surveys have been conducted in 27th (1972-73), 32nd (1977-78), 38th (1983), and 43rd (1987-88) rounds. To maintain the continuity of survey data on consumer expenditure for construction of time series, NSSO has carried out annual thin sample surveys on household consumer expenditure in addition to quinquennial surveys. This has started

from 42nd (1986-87) round.

5. DATA GAPS RELATING TO POVERTY ESTIMATION STUDIES

(1) The poverty line is anchored in a norm for calorie consumption which is taken as representing an absolute nutritional requirement based on the age, sex and activity status of the entire population. To buy the requisite calories one requires definite income. The measurement of the extent of inequality in the distribution of income in the country, therefore, requires data on household income distribution by size classes. Inspite of its importance and direct relevance to economic policy formulation, the study of income distribution in the country has not come to form a regular exercise mainly because of the paucity of the basic data relating to income distribution. In the absence of time series data on household income distribution, most poverty related studies in India have relied on NSS Consumer expenditure survey data.

(2) Income received by the households by far has the largest share in the total and includes not only the labour and property income generated through production of goods and services but also the transfer incomes received mainly from the government in the forms of relief, unemployment insurance benefits, pension etc. Besides these items of factor income and transfers, households also receive income in kind in the form of community and social services provided by the government, like education, medical and health and recreation which are received by the households without any financial payments (or concessional payments). Such services are expected to accrue proportionately more to lower income groups than the rest. Comprehensive study of household income distribution should, therefore, include all these aspects.

NSSO have been making attempts to collect data on household income, the latest being through the "Pilot Survey on Income, consumption and Saving" in 1983-84 in both rural and urban areas of five states, namely Maharashtra, Tamil Nadu, Uttar Pradesh, Haryana, Orissa and the metropolitan cities of Calcutta, Bombay, Delhi and Madras. The Primary objective of the survey is

to explore the possibility of evolving an operationally feasible and technologically sound methodology for the collection of data on household income through household surveys. In this survey two approaches were adopted for the measurement of household income, namely (i) collection of data on income from different sources of income of sampled households and (ii) collection of data on household consumption and savings which would give an alternative estimate of household income. Unfortunately, it has not been possible so far to evolve a suitable methodology for collection of data on household income through household surveys. The efforts in this direction should, however, be continued.

(3) Non-availability of appropriate state specific cost of living is an important gap in the data availability for making state specific estimates of poverty. Steps are required to be taken to construct the price indices representing changes in consumer prices of the poor at relevant disaggregated levels.

(4) The estimates of the incidence of poverty as derived from NSS consumption expenditure distribution provide a composite picture of the number of people whose per capita consumption expenditure is below the desired minimum. It does not, however, provide a complete picture of the state of well-being of the population; for example, it does not tell us anything about the living environement. The data is, therefore, required for dissecting the poverty profile in terms of dominant characteristics, namely, their distribution by region, social group, family characteristic, like, size, education age, sex of the head of the household, dependency ratio etc.

REFERENCES

1. Bardhan, P.K. (1971) : On the minimum level of living and the rural poor - A further note. *Indian Eco. Rev.* April 6.
2. Dandekar, V.M. and Rath, N. (1971) : *Poverty in Inida*. Indian School of Political Economy, Pune.

3. Dantwala, M.L. (1985) ; Technology, growth and equity in Agriculture. In Mellor and Desai (eds) 1985 - Agricultural growth and rural poverty - variations on a theme by Dharam Narain. IFPRI/John Hopkins University Press, Baltimore and London.

4. Minhas, B.S. (1969) : Fourth Plan - Objectives and Policy Frame. Vohra and Co., New Delhi.

5. Rudra, A. (1974) : Minimum level of living. In T.N. Srinivasan and P.K. Bardhan (eds.) A statistical Examination in Poverty and Income Distribution. Statistical Publishing Society, Calcutta.

6. Planning Commission, Government of India (1979) : Report of the Task Force on Projections of Minimum Needs and Effective Consumption Demand.

7. Planning Commission, Government of India (1993) : Report of the Expert Group on Estimation of Proportion and Number of Poor.

Dr. Gulab Singh
(Jt. Director, Planning)
N-289, Sector 8, R.K. Puram
New Delhi - 110022

पुस्तक-समीक्षा

१. **दीक्षालोक** (प्रकाशक– स्वामी श्रद्धानन्द अनु. प्रकाशन केन्द्र, गु० कांगड़ी, सम्पादक प्रो० विष्णुदत्त राकेश, सह सम्पादक– डॉ० जगदीश विद्यालंकार)

दुर्लभ दीक्षान्त भाषणों एवं सारस्वत व्याख्यानों का संग्रह-रूप यह ऐतिहासिक दस्तावेज है। इसका प्रकाशन श्री स्वामी श्रद्धानन्द अनुसंधान प्रकाशन केन्द्र, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार से सन् १९९७ में हुआ। आगामी वर्षों में गुरुकुल कांगड़ी, विश्वविद्यालय की मनायी जाने वाली शताब्दी की विस्तृत योजना की यह पहली कड़ी है। ग्रन्थ के प्रधान सम्पादक हिन्दी जगत् के जाने माने विद्वान् और गुरुकुल कांगड़ी वि०वि० में हिन्दी विभाग के प्रोफेसर डॉ० विष्णुदत्त राकेश हैं जिन्होंने इसका सम्पादन गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष डॉ० जगदीश विद्यालंकार के सहयोग से किया है। इसका मूल्य ५००/- रु० है। विद्वान् सम्पादक ने इस ग्रन्थ को दो खण्डों में विभक्त किया है। पहले खण्ड में सन् १९१३ से १९९६ तक इस शताब्दी में विश्वविद्यालय में दिये गये ऐतिहासिक दीक्षान्त भाषणों का संग्रह है। जिसमें स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा गांधी, पं० मदनमोहन मालवीय, साधु टी.एल. वास्वानी, आचार्य नरेन्द्रदेव, पं० नेहरु, डॉ० गोकुल चन्द नारंग, डॉ० सम्पूर्णानन्द, पं० गोविन्दवल्लभपन्त, डॉ० रवीन्द्रनाथ ठाकुर, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, डॉ० राधाकृष्णन्, श्रीमति इन्दिरा गांधी एवं डॉ० ओदोलेन स्मेकल आदि के प्रमुख दीक्षान्त भाषण हैं। द्वितीय खण्ड में विश्वविद्यालय में समय-समय पर विभिन्न अवसरों पर प्रदत्त सारस्वत व्याख्यान हैं। जिनसे भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं वैदिक साहित्य से सम्बन्धित गहन और दुर्लभ तत्वों पर प्रकाश पड़ता है। इसमें डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, महात्मा मुंशीराम, आचार्य रामदेव, विनोबाभावे, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, डॉ० मंगलदेव शास्त्री, नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ, पं० नेहरु, ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, प्रो० भवानीलाल भारतीय, डॉ० रामनाथ वेदालंकार, आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन आदि के लेख उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार प्रधान सम्पादक ने इस सारी दुर्लभ सामग्री का सम्पादन अपने द्वारा लिखित विस्तृत परिचयात्मक भूमिका के साथ किया है। इस भूमिका में शिक्षा से सम्बन्धित व्यक्तित्व के निर्माण में अतीव उपयोगी घटक तत्वों जैसे - अर्जित संस्कार, माता-पिता की शिक्षा, परिवेश आदि का वर्णन करने के साथ गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली पर पर्याप्त विचार किया है और इस प्रणाली की एक अन्य विशेषता आत्म निरीक्षण द्वारा शिक्षा पर भी विचार किया है। इस तरह वेद, उपनिषद् एवं अंग्रेजी कवि वर्ड्सवर्थ के आवश्यक उपयोगी वचनों को अपने कथ्य की पुष्टि में यथा स्थान उद्धृत करते हुए गुरुकुल कांगड़ी के स्नातकों द्वारा राष्ट्रिय निर्माण के विविध

ा क्षेत्रों में किये गये कार्यों का भी संक्षेप में दिङ्मात्र उल्लेख किया गया है। ग्रन्थ आरम्भ में हिन्दी जगत् के मूर्धन्य विद्वान् एवं गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के यशस्वी कुलपति डॉ० धर्मपाल जी का प्रस्तुत ग्रन्थ के सन्दर्भ में 'दो शब्द' के रूप में उद्बोधनात्मक संक्षिप्त लेख भी है। वास्तव में यह ग्रन्थ उनकी इच्छा का ही मूर्त रूप है। कुलपति डॉ० धर्मपाल जी की इच्छा थी कि गुरुकुल में समय-२ पर पधारने वाले महापुरुषों के भाषणों का संकलन प्रकाशित किया जाए ताकि आज का विद्यार्थी यह जान सके कि इस शताब्दी के निर्माता महापुरुषों की दृष्टि में गुरुकुल क्या था और गुरुकुल क्या है ? निस्सन्देह इन भाषणों तथा व्याख्यानों से पूरी शताब्दी का शैक्षणिक इतिहास उभरकर सामने आया है। हमें विश्वास है कि नई पीढ़ी के अध्येताओं को इन भाषणों के प्रकाश में अपना लक्ष्य निर्धारित करने की प्रेरणा मिलेगी। सुधी सम्प्रदाय में निश्चय ही यह ग्रन्थ आदर का पात्र बनेगा ऐसा विश्वास है। ग्रन्थ का मुद्रण कम्प्यूटर द्वारा बहुत सुन्दर रूप में हुआ है। इसमें लगभग ६०० पृष्ठ हैं। यह ग्रन्थ पठनीय एवं सराहनीय है।

डॉ० दिनेशचन्द्र शास्त्री
उपसम्पादक : गुरुकुल पत्रिका

2. SPIRITUAL EXALTATION OF OM (B.D. DHAWAN) 395/15=I, CHANDIGARH

Review of the book entitled 'Spiritual Exaltation of OM" by Dr. B.D. Dhawan, Self published, available with the author at House No. 359/15-!, Chandigarh, India PP xxvii+128. Rs.150/180 (soft & hard bound) / $10.

I have thoroughly gone through the afore-said recently published book of Dr. Dhawan. He has retired from the Punjab Civil Service as Deputy Secretary to Government of Punjab(India). He is M.A. in Economics/ Sanskrit and Ph.D. in Sanskrit (Vedic Literature) from Punjab University, Chandigarh. This is his second book on Vedic Literature. Besides, he has written about forty literary articles on vedic literature. Valmiki Ramayana etc.

According to Indian Philosophy, OM has been the 'Most sacred word' and an ifallible means of meditation on God. Infact, the entire vedic literature is studded with so many verses which eulogise not only its efficacy in Self-Realisation, but also personal moral upliftment through recitation of and meditation on OM. This

laudable syllable has been said to be not only a mere means, but also the *loftiest goal* to be achieved within the span of this very life. The book of Dr. Dhawan deals with the metaphysical sublimity of OM in an altogether new and unique manner so as to land the worshipper into the arena of 'Extreme Bliss'. The book has been written in an easily understandable simple English, but the flow of the language as well as the thought underneath have been made to go hand in hand so as to progressively rid any normally zealous reader from the all-permeating characteristic human ignorance and misery so as to enable him to attain the qualities of a 'Self-Liberated' person in this very life.

The book is not confined to mere efficacy of OM in uplifting an ardent seeker of 'Supreme Truth' to the high pedestal of 'Mystic Ecstacy', but it also opens up vast vistas of moral and spiritual knowledge to a devoted reader. It immensely widens and sublimates insight into the high altitudes of moral/spiritual equipoise and loftiness. The book gives much needed introduction to the broad basics of Vedic Literature like Monotheism, true nature of author does stop here and diligently and preseveringly presents before the reader's mind in a chart form perfect unison between the functioning of the various limbs/organs in the human body and management of the operations of a multitude of macrosmic forces of the entire universe in the form of a well-knit and perfectly controlled phenomena wherin mighty functionaries like sun, moon etc. observe unfailing regularity and precision even upto fraction of a moment. In short, the book presents to any zealous reader a comprehensive view of the latent, but easily discernible operation, of the omnipotent 'Divine Force' in whole of the world. This, by itself, is potent enough to infuse a moral awakening in the modern materialistically dominated mind so as to impart the essential balancing impact for elimination of the worldly stresses and strains. There are, therefore, good grounds to ifer that the book greatly serves as an elixir for attainment of moral upliftment in this very life.

Mandukya Upanishad which forms the primary base of this book is very brief. However, it is one of the principal upanishads because of its metaphsycal richness and unique approach towards the subject of meditaiton through OM. It has almost become a practice to super-impose on it, the contents of another voluminous book called Agamasastra of Gaudapada, even though, most of it is irrelevant to the subject matter of the upanishad. The author has, therefore, pertinently, brought out the points of contrast and distinction betweem these two books in the form of a seperate chapter.

Last, but not the least, the book contains exhaustive and penetrating notes for the guidance of the research students and scholars regarding correct interpretation of so many vedic verses and words with deep philosophical/mystical significance. This brings out the great amount of labour the author has put in to present, an ordinarily difficult subject, in a readable and understandable language. Briefly speaking, the book ia a potaent catalyst to, both mentally and supramentally, exalt a devoted and even a general reader.

Dr. Vikram Kumar
Reader, Punjab University, Chandigarh